॥ ओ३म् ॥

आर्य सिद्धान्त तथा सिख गुरु

लेखकः—

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

* ओ३म् *

आर्य सिद्धान्त तथा सिख गुरु

लेखकः—
श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज
संस्थापक दयानन्द मठ
दीनानगर (गुरदासपुर)

प्रकाशकः—
श्री पूर्णचन्द्र आर्य
मन्त्री—विद्या-प्रचारिणी-समिति (ट्रस्ट) पेप्सू,
पटियाला

प्रथमावृत्ति २०००] सं० २००६ वि० [मूल्य १।)

प्रकाशक—
पूर्णचन्द आर्य
मन्त्री विद्या प्रचारिणी समिति(ट्रस्ट) पेप्सू

प्रकाशक का वक्तव्य

आर्यावर्त में अनेक सम्प्रदाय और मत मतान्तर प्रचलित हैं।
इन में जहां परस्पर विभिन्नता है वहां सादृश्य भी कुछ कम
नहीं। यदि सद्भावना से एक दूसरे मत का अवलोकन किया
जाय, तो भेद-भाव दूर होकर सुख बढ़ता है। इसीभावना
से प्रेरित होकर हम ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया
है। ग्रन्थ लेखक पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी
महाराज जहां आर्य सिद्धान्तों के मर्मज्ञ हैं
वहां सिखभाइयों के आराध्य स्वरूप
गुरुग्रन्थ साहिब, सिख इतिहास और
साहित्य के भी पारंगत विद्वान्
हैं। आपने आर्य सिद्धान्त और
सिखगुरुओं के मन्तव्यों
का सुन्दर समन्वय किया
है। हमें विशवास है कि
इस ग्रन्थके अवलोकन
से आर्य-जाति में
प्रेमभाव की वृद्धि
होगी।

निवेदक—पूर्णचन्द आर्य

मन्त्री–विद्या प्रचारिणी समिति (ट्रस्ट) पेप्सू

पटियाला १५—१—५३

विषय-सूची

आर्य जगत् के मान्य नेता

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

❀ ओ३म् ❀

द्वितीयावृत्ति की भूमिका

प्रथम यह पुस्तक 'आर्य सिद्धान्त अते सिख गुरु' नाम से छपी थी तब यह पुस्तक गुरुमुखी लिपि और पंजाबी भाषा में थी। उसका कारण यह था—सिख प्रायः उरदू, फारसी अधिक पढ़ते थे, कितने ही सिखों ने ज्ञानी आदिक पञ्जाबी की परीक्षाएँ उरदू लिपि में पढ़ीं थीं, उसके पश्चात् वह गुरुमुखी लिपि पढ़ते थे। अकारण ही उनको हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि से द्वेष था। इस अवस्था में उरदू में छापना मैं न चाहता था, हिन्दी सिख न पढ़ते थे। मध्यमार्ग यही था, कि पुस्तक गुरुमुखी लिपि में छापी जाय।

अब वह अवस्था नहीं है। अब देवनागरी लिपि और हिन्दी राष्ट्रिय भाषा है। इसलिये अब देवनागरी लिपि और हिन्दी में छापना ठीक जान कर ऐसा किया गया है।

उस समय भाषा पंजाबी थी, इस बार भाषा सरल हिन्दी और पंजाबी दोनों हैं। कुछ पाठ तो उन पुस्तकों के हैं, जो पंजाबी भाषा में हैं। वह पाठ पंजाबी में ही छापे हैं, हिन्दी सरल इसलिये लिखी है कि पंजाब में यह अभी नई ही है। यह सत्य है, आर्य समाज ने इसका प्रचार किया है, तो भी उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थानादि प्रान्तोंवत् पंजाब की भाषा यह नहीं बनी है।

पाठ कुछ बढ़ाये हैं और घटाये भी हैं, परन्तु विशेष अंतर नहीं हैं। सामान्य रूप से पाठ वही हैं।

इस बार एक प्रकरण अधिक है, प्रथम २१ प्रकरण थे अब २२ हैं। पुनर्जन्म प्रथम न था। अब वह भी लिख दिया है।

प्रथम आवृत्ति विरजानन्द वैदिक संस्थान द्वारा उसके अध्यक्ष श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने १९४५ में छापी थी, उनमें से कुछ तो पाठकों तक पहुंच चुकी थीं शेष सब पंजाब विभाग समय गुरुदत्त भवन में विभाजन की भेंट हो गईं। इस कारण इस द्वितीयावृत्ति का यत्न करना पड़ा।

यह स्वाभाविक बात है कि मनुष्य भूलने वाला है। ईश्वर ही भूल से रहित है। "यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।' मुंडक १।९ 'अभुल गुरु करतार' पाठ भी यही बतलाते हैं। इस लिये सर्वसज्जनों से नम्र निवेदन है, कि यदि किसी स्थल में भूल ज्ञात हो, तो लिखने का कष्ट करें, ताकि उस पर विचार करके उस भूल का भूल की अवस्था में सुधार कर लिया जाय--अर्थात् उसको ठीक कर लिया जाय।

इस पुस्तक में मैंने खंडन किसी का नहीं किया है। प्रत्येक सिद्धान्त जो ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा था, उसके पोषक अथवा उस सिद्धान्त पर जो गुरु जी महाराज ने उपदेश लिखे हैं, उनका संग्रह कर दिया है। यदि मुझे कोई शब्द उसके विपरीत मिला, तो उसे भी लिख दिया है। ताकि पाठक अपनी इच्छानुसार विचार के स्वयं निश्चय कर सकें।

कुछ बातें ऐसी भी हैं जिनको इस समय सिख नहीं मानते हैं। मुझे आग्रह नहीं, कि सिख उन विषयों पर जो विचार रखते हैं वह उन्हें छोड़कर मेरे विचार मान ही लें। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे जो सिद्धान्त सत्य प्रतीत हुए, मैंने वही लिखे हैं--बस और वह मेरे विचारों को भी जान लें। इत्योम्।

१ भाद्रपद सम्वत् २००९ वि०
तदनुसार १९ अगस्त १९५२ ई०

स्वतन्त्रानन्द
दयानन्द मठ
दीनानगर

भूमिका

इस समय कई सिख लिखते और कहते हैं, कि सिख पंथ का वैदिक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार कुछ वैदिक धर्मी भी हैं, जो मानते हैं, कि सिख पंथ एक पृथक् ही सम्प्रदाय है। यह दोनों विचार ठीक नहीं हैं। सिख पंथ वैदिक धर्म के उतना ही समीप है, जितने अन्य सम्प्रदाय हैं।

यह विचार कई वार उत्पन्न हुये थे कि कोई ऐसा पुस्तक लिखा जाय जिसमें वैदिक सिद्धान्त तथा श्री गुरु ग्रन्थ जी के शब्द साथ साथ लिखे जायं। कई लेखकों से ऐसा करने की प्रार्थना की, उनमें से किसी ने यह कह कर टाल दिया कि कोई लाभ नहीं, किसी ने कहा, समय नहीं और कई चुप ही रहे। कई महाशयों ने 'जेहड़ा वोले ओही कुंडा खोले' के अनुसार कहा कि आप ही लिखें।

कई बार विचार भी हुआ, कि यदि कोई और नहीं लिखता, तो तू ही लिख। क्योंकि न करने से कुछ करना अच्छा ही है। परन्तु अपनी अयोग्यता और पुस्तक लिखने का अनभ्यास, न लिखने की प्रेरणा करता रहा। इनके साथ साथ आर्य समाज और सभा के काम देखकर तो कहना पड़ता था 'बालक डाई वर्ष का और साढ़सती साढ़े सात वर्ष की।" अतः समय निकालना कठिन सा ही था।

इसी विचार में कई वर्ष बीत गये। सभा के कामों से कुछ अवकाश भी मिल गया, किन्तु समाज के काम अभी पीछा न छोड़ते थे। पंजाब में एक कहावत है "जे परमेश्वर करना लोड़े,

सौ सबब एक पल विच जोड़े ।" इसी प्रकार परमात्मा ने अव-काश का ढंग बना दिया।

मैं और स्वामी वेदानन्द तीर्थ जो रायकोट गुरुकुल का उत्सव समाप्त करके कवि गिरधरराय जी की जन्मभूमि और वंशावलि आदि का पता लेने दसूहा गये। लौट कर जब जालन्धर स्टेशन पर आये, तब एक आर्य समाजी ने 'प्रताप' समाचार पत्र लाकर अंगुली से निर्देश करके एक पाठ पढ़ने को कहा। मैंने उसे पढ़ा। उसमें लिखा हुआ था– जिला रोहतक के दौरे के कारण स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के वारण्ट निकले हैं। ऐसा सुना है।

उसके पश्चात् वारण्ट की प्रतीक्षा होने लगी और साथ ही आर्य समाज के कामों का चक्र भी चलता रहा। एक बार मैं १६-४-४३ को बाहर से मठ में (दीनानगर) पहुंचा और २२-४-४३ को वारण्ट भी आगए। खान साहिब मुहम्मद अमीरखाँ थानेदार दीनानगर वारण्ट लेकर आए। मैं पहले ही प्रतीक्षा में था। इस-लिए कोई आश्चर्य की बात न थी। मैं उनके साथ चल दिया। मठ से बाहर जाकर पण्डित रामचन्द्र आदि मठ निवासियों को विदा किया। थाने पहुँचकर थानेदार साहिब तो ठहर गए और 'ढग्ग' मीयां मुहम्मद अली हवलदार को सौंप दी। वह मुझे गुरदासपुर ले गए। इस समय लाला भद्रसेन जी ओहरी, लाला देवदत्त जी आदि भी गुरदासपुर साथ ही गए। पुलिस का व्यव-हार अच्छा था।

सायंकाल लगभग साढ़े तीन बजे जेल भेजने की आज्ञा मिल गई। जेल में पहुँचाकर सब साथी लौट आए।

३।५।४३ को प्रातःकाल ही एक थानेदार आया, उसके पास आज्ञापत्र था, कि मुझे लाहौर किला में पहुंचा दिया जाय, उसने हथकड़ी लगा, रेल में बिठा लाहौर किला में पहुँचा दिया।

१०।६।४३ तक मैं किले में रहा। वहां की बातें लिखने की आवश्यकता नहीं। उस दिन १०-६-४३ को सायंकाल साढ़े सात बजे किले से बाहर जाने की आज्ञा मिली, साथ ही आज्ञा थी, कि २४ घंटे के अन्दर अन्दर दीनानगर पहुँच जाओ, वहां नजर बन्द रहोगे, आदि।

दुर्ग से निकल कर महाशय कृष्णजी के गृह पर आया, वहां अनेक आर्यसमाजी मिले और अन्य परिचित सज्जन भी मिले।

रात को महाशय कृष्णजी ने कहा 'दैवयोग से नजरबन्द तो हो ही गए हो,' वहां बैठे बैठे, कोई पुस्तक ही लिख दो। उन्हें उत्तर दिया गया कि यह बात विचारणीय है। ११ जून को प्रातः ६ बजे की गाड़ी से चलकर ११ बजे दीनानगर आ पहुंचा।

यहां आकर सोचने लगा कि इन दिनों में क्या किया जाय, तब महाशय कृष्णजी के शब्द स्मरण हुए, फिर सोचने लगा-क्या लिखूं। अन्त में निश्चय हुआ कि श्री गुरु ग्रन्थ जी का पाठ किये दीर्घकाल व्यतीत हो गया है। उसे पढ़कर गुरुजी का मत और ऋषि दयानन्द जी का उपदेश संग्रह कर दिया जाय।

जब निश्चय हो गया तब पुस्तकों का प्रश्न सामने आया। ईश्वर की दया से अमृतसर के स्वतन्त्रानन्द नामक एक पुस्तकालय ने पुस्तक देने की कृपा की और यह कार्य लगभग २० दिन में पूरा हो गया और आषाढ़ कृष्णा १४ तदनुसार १-७-४३ को पुस्तक देखने और लिखने का कार्यारम्भ कर दिया गया।

पुस्तक पढ़ते समय पता लगा, कि जिस प्रकार ऋषि दयानन्द जी धर्मप्रचार करना चाहते थे और मतमतान्तरों के विरुद्ध थे, उसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह जी भी मतों का निषेध करके धर्म का प्रचार करना चाहते थे। इस भांति इस बात में यह दोनों एक ही पथ के पथिक हैं।

आगे मैं उन दोनों के शब्द लिखता हूं--

"जो जो बात सबके सामने माननीय है, उसको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धांतों को स्वीकार करता हूं, और जो मत-मतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं, उनको मैं प्रसन्न (पसन्द) नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट कर सर्वसत्य का प्रचार कर सबको ऐक्य मत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से 'यह सिद्धांत सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे' जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

—सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

गुरु गोविंदसिंह जी विचित्र नाटक में लिखते हैं—

जे कोई होत भयो जग सिआना। तिनतिन अपनो पंथ चलाना।१४
परम पुरुष किनहूँ नहि पायो। वैर वाद अहंकार बढ़ायो।१५
जिन जिन तनक सिधि को पायो। तिन तिन अपना राह चलायो।
परमेसर नहि किनहूँ पछाना। मम उचारते भयो दिवाना। १६
परम तत किनहूं न पछाना। आप आप भीतर उरझाना।१७
जे प्रभु परम पुरुष उपजाए। तिन तिन अपने राह चलाए।२६
हम इह काज जगत में आए। धर्म हेत गुरुदेव पठाए।
जहां तहां तुम धरम विथारो। दुसट दोखीअन पकर पछारो।४२
जे जे भए पहल अवतारा। आप आप तिन जाप उचारा।
प्रभु दोसी कोई न विदारा। धरम करम को राह न डारा।४४

स्वांगन में परमेसर नाहीं। खोज फिरै सबहा को काही।
अपने मन करमो जिह आना। पार ब्रह्म को तिनी पछाना।५५

—विचित्र नाटक अध्याय ६

ऋषि दयानन्दजी, गुरु गोविन्दसिंह जी दोनों ही अपना उद्देश्य धर्म प्रचार मानते हैं, दोनों ही मत मतान्तरों के बंधन से रहित होने का उपदेश देते हैं. उभय यहीं कह रहे हैं कि धर्म का पालन करो। इसलिये दोनों धर्म प्रचार में एक ही मार्ग गामी हैं।

इन बातों का ध्यान रखकर इस पुस्तक में प्रथम साधारण रूप से सिद्धांत का वर्णन किया है। पश्चात् उसी विषय का सत्यार्थप्रकाश का कुछ पाठ लिखा है। पुनः श्री गुरु ग्रन्थसाहिब जी के कुछ शब्द लिखकर कहीं कहीं दसम गुरुग्रथ से भी कुछ शब्द लिखे हैं। तदनन्तर कहीं कहीं किसी अन्य प्रतिष्ठित सज्जन का कोई पाठ लिख दिया है ताकि वह सिद्धांत सहजता से समझ में आ जाय।

इस पुस्तक में २१ प्रकरण हैं।

१–ईश्वर २–ईश्वर के नाम ३-साकार-निराकार ४-निगुण-सगुण ५–अवतार ६–मूर्त्ति-पूजा ७–जीव ८–वेद ९–कर्म १०–यज्ञोपवीत ११–संध्या १२. हवन १३–श्राद्ध १४–अतिथियज्ञ १५–वर्ण १६. तीर्थ १७–शराब, मांस १८–नमस्कार १९–स्त्री-जाति २०–वेष २१–सत्यार्थ प्रकाश का पाठ।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनेक पुस्तकों से सहायता लेनी पड़ी है। उनमें से कुछ पुस्तक तो महापुरुषों के लिखे हुए हैं और कुछ पण्डित और विद्वानों ने लिखे हैं। मैं उन सबका ऋणी हूँ इस लिए उन सबका धन्यवाद करता हूं। यदि वे पुस्तकें मुझे न मिलतीं तो मैं यह पुस्तक न लिख सकता।

यह साधारण बात है, कि जो इसके लिखने में मुझसे कोई भूल हो गई हो (जीव अल्पज्ञ है और 'भुलण अंदर सभ को' ठीक ही है) यदि कोई सज्जन मुझे मेरी भूल सुझावेगा, तो मैं उसपर विचार अवश्य करूँगा और ठीक होने पर उसे स्वीकार कर आगे को सुधार कर दूंगा।

अन्त में महाशय कृष्णजी जिन्होंने पुस्तक लिखने की प्रेरणा की, उनका धन्यवाद करता हूं और जिस पुस्तकालय ने मुझे सब पुस्तक दिये, उनका धन्यवाद करके भूमिका लिखने से लेखनी को रोकता हूं।

स्वतन्त्रानन्द
दयानन्द मठ
दीना नगर

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा वि० २०००
(१५-८-४३)

ओ३म्

एक

ईश्वर

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में सातवां समुल्लास ईश्वर परक लिखा है। उसमें निम्न पाठ मिलता है।

(१) प्रश्न—ईश्वर व्यापक है वा किसी एक देश में रहता है?

उत्तर—व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता, तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्ता और प्रलय-कर्ता नहीं हो सकता।

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं?

उत्तर—है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो, वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है, कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य, पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किञ्चित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

प्रश्न—जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्र आदि इन्द्रियां नहीं हैं, फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है?

उत्तर—अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।
श्वेताश्वतर० ३। १९

परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्ति-रूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता, पग नहीं किन्तु व्यापक होने से सब से

अधिक वेगवान, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सब की बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ, सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

योग० १।२४

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

प्रश्न—वेद में ईश्वर अनेक हैं। इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

उत्तर—नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा, जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों, किंतु यह तो लिखा है, कि ईश्वर एक है।

प्रश्न—परमेश्वर सादि है वा अनादि?

उत्तर—अनादि अर्थात् जिस का आदि कोई कारण वा समय न हो, उसको अनादि कहते हैं।

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७

(२) न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। १६।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। १७।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। १८।
तमिदं निगतं सहः स एष एक एव वृदेक एव। २०।

अथर्व० कांड १३।४

परमेश्वर एक ही है, उस से भिन्न कोई न दूसरा न तीसरा

और न कोई चौथा परमेश्वर है। न पांचवां न छठा और न कोई सातवां ईश्वर है। न आठवां न नवमां और न कोई दशमा ईश्वर है। किन्तु वह सदा एक अद्वितीय ही है, उससे भिन्न दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं। –ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, ब्रह्मविद्या विषय।

(३) ईश्वर, कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है। जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्व-शक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों का कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है। उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

(४) ईश्वर, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है, तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्य गुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिस का कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप, पुण्य के फल ठीक ठीक पहुंचाना है। उस को ईश्वर कहते हैं। —आर्य्योद्देश्य रत्न माला

(५) १—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२–ईश्वर-सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है। ––आर्यसमाज के नियम

ऋषि दयानन्द जी ईश्वर तथा उसके गुण ऊपरिलिखित रूप में मानते हैं। जिसने अधिक देखना हो, उसे उनके पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाश का सप्तम समुल्लास पढ़ना चाहिए। आगे गुरु-ग्रंथ में से वह शब्द लिखता हूँ, जो इसी विषय को प्रगट करते हैं।

(१) १ ओं सति नाम कर्ता पुरुष निरभउ निरवैर अकालमूर्ति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि जपु। आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु। —जपुजी १

(२) थापिया न जाइ कीता न होइ। आपे आप निरंजन सोइ। —जपुजी ५

(३) तू सदा सलामति निरंकार। —जपुजी १६

(४) जिन इह जगत उपाइया त्रिभवण कर आकार। गुरुमुख चानण जाणीऐ मनमुख मुगध गवार। घट-घट जोति निरंतरी बूझे गुरुमति सार। —श्री राग महला १ शब्द १६, ४

(५) सोई मौला जिनि जगु मौलिया हरिया कीया संसारो। आब खाक जिनि बंध रहाई धन्न सिरजण हारो।

—श्री राग महला १, शब्द २८

(६) बाबा अलहु अगम अपार। पाकी नाई पाक थाइ सचा परवरदगार। —श्री रागअष्टपदियां १, म० १, अष्ट० १

(७) अलाहु अलख अगंम कादरु करणहार करीम। सभ दुनी आवण जावणी मुकामु एक रहीम।

—श्री राग महला १। अष्टपदियां १७। ६

(८) क्या उपमा तेरी आखी जाइ। तू सर्वे पूर रहिया लिवलाइ।

—राग आसा महला १ शब्द ७

(९) अलख अपार अगम्म अगोचर ना तिस कालं ना करमा। जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिस भाउ न भरमा। १। साचे सचियार विटहु कुरवाणु। ना तिस रूप वरन नहीं रेखिया साचे

सबद नीसाणु । रहाउ । ना तिस मात पिता सुत बंधप ना तिस कामना नारी । अकुल निरंजन अपर परंपर सगली जोति तुमारी । २ । घट-घट अन्तर ब्रह्म लुकाइया घटि-घटि जोति सबाई । ३

—श्री राग महला १ शब्द ६

(१०) सभ महि जोति जोति है सोइ । तिसकै चानणु-सभ महि चानणु होइ । —राग धनासरी महला १ शब्द ६

(११) हका कबीर करीम तू बे ऐब परवरदगार ।

—राग तिलंग महला १ शब्द १

(१२) जिनि जीउ पिण्ड दित्ता तिस चेतहि नाहि । मड़ी मसाणी मूड़ै जोगु नाहि ।

—राग वसन्त अष्टपदियां महला १ अष्टपदी ५ पद ६

(१३) एको रब रहिया सब ठाईं । अपर न दीसै किसु पूज चढ़ाई । —राग प्रभाती अष्ट पदियां महला १ अष्टपदी ६ पद १

(१४) भुलण विच कीया सभ कोई करता आप न भुले ।

— प्रभाती अष्टपदिया महला १ अष्ट० ४, ८

(१५) घर होंदा पुरूप न पछाणिया अभिमान मुठे अहंकार ।

—श्री राग महला ३ शब्द ५३

(१६) हरि की तुम सेवा करहु दूजी सेवा करहु न कोइ जी

—राग गुजरी महला ३ शब्द ४

(१७) सभ किछ सुणदा वेखदा क्यों मुकर पइआजाइ ।

—श्री राग महला ३ शब्द ५६

(१८) मेरा प्रभु निरमल अगम अपारा । बिन तकडी तोले संसारा । —राग माझ अष्टपदियां महला ३ अष्टपदी ३ पद १

(१६) मेरा प्रभु भरपूर रहिया सभ थाईं ।

—राग माझ महला ३ शब्द २८

(२०) तूं पारब्रह्म बेअन्त स्वामी तेरी कुदरति कहण न जाइ। —राग आसा छंत महला ३ छंत ७

(२१) सदा सदा सो सेविऐ जो सभ महि रहै समाइ। अवर दूजा क्यों सेविऐ जम्मेते मरजाइ।

—गुजरी की वार महला ३ वार २

(२२) तूं पार ब्रह्म बेअन्तु बेअन्तु जी तेरे क्या गुण आख वखाणा। —राग आसा महला ४ सो पुरुष

(२३) सतिगुरु मेरा सदा सदा ना आवै न जाइ। ओह अबिनासी पुरुष है सभ महि रहिया समाइ।

—राग सूही अष्टपदियां महला ४ अष्टपदी ११ पद १३

(२४) पौड़ी। हरि जल थल महियल भरपूर दूजा नाहि कोइ। हरि आप वहि करे नियाउ कूडियार सभ मार कढोइ।

—श्रीराग की वार महला ४ वार १६

(२५) जहि जहि देखा तह तह स्वामी। तूं घट घट रविया अन्तरयामी। --राग माझ महला ४ शब्द ७

(२६) पारब्रह्म अपरंपर स्वामी। सगल घटा के अन्तर्यामी।

--राग गौड़ी महला ५ शब्द १३३

(२७) पार ब्रह्म का अन्त न पार। कौन करे ताका वीचार।

—राग गौड़ी अष्टपदिया महला ५ अष्टपदि ४ पद ८

(२८) सुख निधान प्रभु एक है अविनाशी सुणिया। जल थल महिअल पूरिया घट घट हरि भणिया।

--राग गौड़ीवार महला ५ वार ७ पौड़ी

(२९) श्लोक। वासुदेव सर्वत्र मै ऊन न कतहूँ ठाइ। अन्तर वाहर संग है नानक काइ दुराइ।

--राग गौड़ी बावन अखरी महला ५ शब्द ४६

(३०) हे अचुत हे पार ब्रह्म अविनासी अघनास। हे पूरन

हे सर्बमै दुःख भंजन गुणतास। हे संगी हे निरङ्कार हे निर्गुण सभ टेक। हे गोविन्द हे गुण निधान जा के सदा विवेक। हे अपरंपर हरि हरे हहिभि होवनहार। हे सन्तां के सदा संग निधारा आधार। —राग गौड़ी बावन अखरी महला ५ शब्द ५५

(३१) तुध रूप न रेखिया जाति तूं वरना बाहरा। ए माणस जाणहि दूर तूं वरतहि जाहरा। तूं सभ घट भोगहि आपि तुध लेपु न लाहरा। तूं पुरुष अनन्दी अनन्त सभ जोति समाहरा। तूं सभ देवा महि देव विधाते नरं हरा। क्या आराधे जिहवा इक तूं अविनासी अपरंपरा। —राग मारू डखणे महला ५ शब्द ५

(३२) सगल वनस्पति महि वैसन्तुर सगल दुध महि घीया। ऊच नीच महिं जोति समाणी घट घट माधो जीया। सन्तहु घट घट रहिया समाहिओ। पूरन पूर रहिओ सर्व महि जल थल रमिइया आहिओ। सर्व निवासी सदा अलेपा सभ महि रहिया समाइयो। —राग सोरठ महला ५ शब्द २६

(३३) जिसु रूप न रेखिया कुल नहीं जाति। पूरन पूर रहिया दिनुराती। —राग मारू सोलहे महला ५। १४। ६

(३४) आदि पूरन मधि पूरन अन्ति पूरन परमेश्वरः। सिमरंति सन्त सर्वत्र रमणं नानक अघ नासन जगदीसुरः।

—राग जैतसरी वार महला ५ वार १

(३५) अकुल निरंजन पुरुष अगम अपारिए। सचो सचा सचु सच निहारिए। —राग गुजरी वार महला ५ वार १

(३६) जह देखउ तह संग एको रव रहिया। घट घट वासी आपि विरले किनै लहिया। जल थल महि अल पूर पूरन कीट हस्त समानिया। आदि अंते मध्य सोई गुरु प्रसादी जानिया।

—राग आसा छन्त महला ५। छन्त ६

(३७) काहेरे वन खोजन जाई। सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई। १। पुहप मधि जिउ बासु वसतु है मुकर माहि

जैसे छाई। तैसे ही हरि वसे निरन्तर घट ही खोजहु भाई। १। बाहर भीतर एको जानहु इह गुरु ज्ञान बताइ।

—राग धनासरी महला ६ शब्द १

(३८) जा को जोगी खोजत हारे पाइओ नाहि तिहि पारा। सो स्वामी तुम निकट पछानो रूप रेखते नियारा।

—राग जैतसरी महला ६ शब्द ३

(३९) सो साहिब रहिया भरपूर। सदा संग नाहीं हर दूर।

—राग गौड़ी कबीर जी शब्द ३८

(४०) परमादि पुरुष मनोपमं सत्यादि भाव रतं। परमद्भुतं पर कृति परं जदिचित सर्व गतं। —राग गुजरी, जैदेव जी

(४१) वसी रबु हियालिये जंगल क्या ढूंडेहिं।

—शेख फरीद श्लोक १९

(४२) परवरदगार अपार अगम बे अन्त तूं।

—राग आशा शेख फरीद

(४३) जल थल पूर रहे प्रभु स्वामी। जत पेखउ तत अन्तर्यामी। —राग गौड़ी कबीर जी शब्द ४०

(४४) कबीर मुल्लां मुनारे क्या चढहि साईं न वहरा होइ। जां कारन तूं वांग देहिं दिल ही भीतर जोइ।

—कबीर जी श्लोक १८४।

आगे कुछ पाठ श्री दसम ग्रंथ जी के भी लिखते हैं।

(१) चक्र चिहन अरु वरन जात अरु पाति नहन जिहि।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कह न सकत किहि।
अचल मूर्ति अनभउ प्रकाश अमितोज कहिजै।
कोट इन्द्र इन्द्राणि सह साहाण गणि जै।
त्रिभवन महीप सुर नर असुर नेतनेत वणत्रिण कहत।
त्व सर्वनाम कथे कवन कर्म नाम वर्णत सुमत। १। जापसाहिब

(२) आदि रूप अनादि मूरति अजोन पुरुष अपार।
सरबमान त्रिमान देव अभेव आदि उदार।
सर्व पालक सर्व घालक सर्वको पुन काल।
जत्र तत्र बिराजही अविधूत रूप बसाल ॥ ७६ ॥ जाप साहिब

(३) लोक चौदह के विषै जग जाप ही जिहि जाप।
आदि देव अनादि मूरति थापिओ जिहि थाप।
परम रूप पुनीत मूरति पूरन पुरुष अपार।
सरब विश्व रचियो स्वंभव गढ़न भंजन हार।८३। जापसाहिब

(४) अलख रूप अछै (अक्षय) अनभेखा।
राग रंग जिहि रूप न रेखा॥
वरन चिहन सब हूं ते नियारा।
आदि पुरुष अद्वैय अविकारा। ३। अकाल उस्तुति

(५) दीनन की प्रतिपाल करे, सन्त उबार गनीम न गारे।
पच्छ पसू नग नाग नराधप सर्व समय सबको प्रतिपारे।
पोषत है जल में थल में पल में कल के नहीं कर्म विचारे।
दीनदयाल दयानिधि दोष न देखत है पर देत न हारे।
२४३ अकाल उस्तुति

(६) आदि अनन्त अगाध अद्वैष सभूत, भविष्य भवान अभै है।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न भै है।
देह विहीन सनेह सभो तन नेह विरक्त अगेह अछै है।
जानको देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दे है।
काहे को डोलत है तुमरी सुधि सुन्दर श्री पद्मापति लै है
२४३ अकाल उस्तुति

(७) सतो सदैव सरूप सत व्रत आदि अनादि अगाध अजै है।
दान दया दम संयम नेम जत व्रत सील सुव्रत अवै है।

आदि अनील अनादि अनाहत आप वेअन्त अद्वैप अभै है।
रूप अरूप अरेख जगरदन दीनदयाल कृपालू भए है। २।

(८) आदि अद्वैप अभेष महा प्रभ सत सरूप सुजोति प्रकासी।
पूर रहियो सब ही घट कै पट नत सभाधि सुभाव प्रणासी।
आदि जुगादि जगादि तुही प्रभू फैल रहियो सब अन्तर वासी।
दीन दयाल कृपालू कृपा कर आदि अयोनि अजै अविनासी
। ३। सवैये

(६) अचुत आदि अनील अनाहद, सत्त सरुप सदैव बखानै।
आदि अजोनि अजाइ जरा विनु, परम पुनीत परंपर मानै।
सिद्ध संभु प्रसिद्ध सबै जग एक ही ठौर अनेक बखाने।
रे मन रंक कलंक विना हरि, तै किह कारण ते न पछाने। ५

(१०) अच्छर आदि अनील अनाहद सत सदैव तुही करतारा।
जीव जिते जल मैं थल मैं सब के सद पेट को पोषन हारा।
वेद पुरान, कुरान दुहूं मिल भांति अनेक विचार विचारा।
और जहान निदान कछु नहिए सुवहान तुही सिरदारा। ६।
सवैये पातशाही १०

इसी विषय के अनेक शब्द श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में हैं। मैं अधिक लिखने से संकोच करता हूं। जिसने अधिक देखने हों, वह वही देख ले। इससे पता लगता है। इस विषय में ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त और सिख गुरुवों का मत समान ही है।

— ❀✱❀ —

ईश्वर के नाम

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के अनेक नाम लिखे हैं। उस नाम के ईश्वर विषयक अर्थ भी लिखे हैं। उन में से कुछ नाम लिखता हूं—

ओ३म्। यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ, कि कहीं गौणिक कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं।

(१) रक्षा करने से—ओ३म्।
(२) आकाशवत् व्यापक होने से--खम्।
(३) सबसे बड़ा होने से—ब्रह्म। ईश्वर का नाम है।
(४) स्वप्रकाश होने से—अग्नि।
(५) विज्ञान स्वरूप होने से—मनु।
(६) सबका पालन करने से—प्रजापति।
(७) परमैश्वर्यवान् होने से--इन्द्र।
(८) सब जगत् के बनाने से—ब्रह्मा।
(९) सर्वत्र व्यापक होने से—विष्णु।
(१०) दुष्टों को दण्ड दे के रुलाने से--रुद्र।
(११) मंगलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से--शिव।
(१२) जिसमें सब प्राणी होते हैं, इसलिये ईश्वर का नाम भूमि।

(१३) जिस का सत्यविचार शीलज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है। इससे उस परमात्मा का नाम-ईश्वर।

(१४) जिस का विनाश कभी न हो, उसी ईश्वर की आदित्य संज्ञा है।

(१५) जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम—मित्र।

(१६) जिस लिये परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है, इसलिये उस का नाम—वरुण।

(१७) जिस के तुल्य कोई भी न हों उसका नाम---परमेश्वर।

(१८) जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम—सविता।

(१९) जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इस से उस परमेश्वर का नाम—कुवेर।

(२०) जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला है। इस लिये उस परमेश्वर का नाम पृथिवी।

(२१) जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा का नाम—आकाश।

(२२) जिस में सब आकाशादि भूत वसते हैं, जो सब में वास करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम—वसु।

(२३) जो आनन्द स्वरूप और सब को आनन्द देने वाला है इसलिए ईश्वर का नाम चन्द्र।

(२४) जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि-मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम—यज्ञ।

(२५) जो सबका रक्षक। जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा

कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इससे उसका नाम पिता है।

(२६) जैसे पूर्ण कृपा युक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इससे परमेश्वर का नाम माता है।

(२७) जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा है इससे उस ईश्वर का नाम गणेश वा गणपति।

(२८) जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम, यम।

(२९) जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है। इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'काल'।

(३०) जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम शेष।

प्रश्न—मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिए।

उत्तर—यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं, क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु है और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता, किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है। इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा ही का ग्रहण यहां होता है। हां, गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है।

'जहां जिसका ग्रहण करना उचित हो वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये।' प्रथम समुल्लास के अन्त में ऋषि ने लिखा है:—

"ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं, क्योंकि जैसे परमात्मा के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म और स्वभाव का एक-एक नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं। -सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १।

आगे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में ओंकार नाम वाले पाठ लिखता हूं।

(१) हरि जीउ सदा ध्याइ तूं गुरुमुख एकंकार।
—श्री राग महला ३ शब्द ४२

(२) अनिक भांति होइ पसरिया नानक एकंकार।
—रागगौड़ी थिति महला ५ शब्द १

(३) एक एकंकार प्रभु करउ वन्दना ध्याइ।
—रागगौड़ी थिति महला ५ शब्द १

(४) सफल जन्म होइआ मिल साधु एकंकार ध्याए राम।
—रागसूही छन्त महला ५ शब्द ८

(५) एकंकार एक पसारा एके अपरअपारा।
—रागविलावल महला ५ शब्द ८७

(६) ओंकार शबद उधरे। ओंकार गुरमुख तरे।
ओनम अखर सुणहु वीचार। ओनम अखर त्रिभवन सार।
—रागरामकली महला १ दखणी ओंकार शब्द १

(७) १ ओं सतिनाम। —जपुजी १

जिस भांति सत्यार्थप्रकाश में शब्दार्थ करके ईश्वर के अनेक

नाम लिखे हैं उसी प्रकार श्री गुरुगोविन्दसिंह जी ने दसम ग्रन्थ में लिखा है। वह इस प्रकार हैं—

तव सर्व नाम कथैकवन करम नाम वर्णत सुमति।

—जापुसाहिब १

(१) प्रणवो आदि एकंकारा। जल थल महियल कियो पसारा।
(२) जो चौबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनिक न पाए
सब ही जग भ्रमे भवरायम्। तांते नाम वेअन्त कहायम्।
(३) सब ही छलत न आप छलाया। तांते छलिया नाम कहाया।
(४) सन्तन दुखी देख अकलावे। दीनबन्धु तांते कहिलावे।
(५) अन्त करत सब जग को काला। नाम काल तांते जग डाला।
(६) समय सन्त पर होत सहाई। तांते संज्ञा मीत सुनाई।
(७) निरख दीन पर होत दयारा। दीनबन्धु हम तवे विचारा।
(८) सन्तन पर करुण रस ढरही। करुणानिधि जग तवै उचरही।
(९) संकट हरन साधवन सदा। संकटहरण नाम भयो तदा।
(१०) दुःखदाहित सन्तन के आयो। दुःखदाहन प्रभु तदन कहायो।
(११) रहा अनन्त अन्त नहीं पायो। तांते नाम विअन्त कहायो।
(१२) जग मों रूप सभन को धरता। यांते नाम बखाने करता।
(१३) किनहूं कहूं न ताहिं लखायो। इह कर नाम अलख कहायो।
(१४) जोनि जगत् में कबहूं न आया। यांते सभों अजोनि बताया।
(१५) ब्रह्मादिक सब ही पचहारे। विशन महेश्वर कौन विचारे।
चन्द सूरज न करे विचारा। तांते जनीअत है करतारा।
(१६) सदा अभेख अभेखी रहई। तांते जगत् अभेखी कहई।
(१७) अलखरूप किनहूं नहिं जाना। तिहिकर जात अलेख बखाना!
(१८) रूप अनूप सरूप अपारा। भेख अभेख सभन ते नियारा।
दायक सभो अजाची सभते। जान लियो करता हम तवते।

—अकाल उस्तुति पादशाही १० चौवीस अवतार ७·१६

आगे पौराणिक नाम लिखता हूँ। यथा राम, श्रीधर, गोविन्द आदि—

१—ववै वासुदेव परमेसुर वेखन कउ जिन वेस किया।
—राग आसा महला १ पटी ३२।

२—घट घट रव रहिया बनवारी।
—राग सोरठ महला १ शब्द ८

३—गोविन्द ऊजल ऊजल हंसा।
—राग माझ महला ३ अष्टपदिया, अष्टपदि २१। १

४-जय गोविन्द गोविन्द ध्याइऐ सभ को दान देइ प्रभ ओहे।
—राग गुजरी महला ४ शब्द २

५—उवरत राजा राम की सरणी।
—राग गौड़ी महला ५ शब्द १६२। ४

६—आराध श्रीधर सफल मूर्ति करण कारण जोग।
—राग गुजरी महला ५ शब्द ३१।

७—अचुत पारब्रह्म परमेसुर अन्तर्यामी। मधुसूदन दामोदर स्वामी। ऋषिकेस गोवरधन धारी मुरली मनोहर हरिरंगा।१

मोहन माधव कृष्ण मुरारे। जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे जगजीवन अबिनासी ठाकुर घट घट वासी है संगा।। २
धरणीधर ईस नरसिंघ नारायण। दाड़ा अग्रे पृथिमी धराइण। बावन रूप किया तुध करने सभ ही सेती है चंगा।। ३

स्री रामचन्द्र जिस रूप न रेखिया। वनवाली चक्रपाणि दरस अनूपिया। सहस नेत्र मूरत है सहसा इकु दाता सभ है मंगा।४।

भगत वछल अनाथहि नाथे। गोपीनाथ सगल है साथे। वासुदेव निरंजन दाते वरण न साकउ गुण अंगा।५।

मुकुन्द मनोहर लछमी नारायण। द्रोपदि लजा निवार उधारण। कमला कन्त करहि कन्तूहल आनद विनोदी निहसंगा।६।

अमोघ दरसन अजूनी संभउ। अकाल मूरति जिस कदे नाहीं खउ। अविनासी अविगत अगोचर सभ किछु तुझ ही है लगा।७।

स्रीरंग वैकुण्ठ के वासी। मछ कच्छ कूरम आज्ञा औतरासी। केसव चलत करत निराले कीता लोड़े सो होइगा।८।

निराहारी निरवैर समाइया। धार खेल चतुरभुज कहाइया। सावल सुन्दर रूप बणावहि वेणु सुनत सभ मोहिगा।६।

वनमाला विभूषण कमलनैन। सुन्दर कुण्डल मुकट वैन। संख चक्र गदा है धारी महा सारथी सत संगा।१०।

पीत पितम्बर त्रिभवन धणी। जगन्नाथ गोपाल मुख भणी। सारंगधर भगवान वीठला मैं गणत न आवै सरबंगा।११।

निहकंटक निहकेवल कहिऐ। धनंजय जल-थल है महिऐ। मृतलोक पइयाल समीपत अस्थिर थान जिस है अभगा।१२।

पतित पावन दुःख भय भंजन। अहंकार निवारण है भव खंडन। भगती तोषित दीन कृपाला गुणे न कित ही है भिगा।१३।

निरंकार अछल अडोले। जोति सरूपी सभ जग मौले। सो मिले जिस आप मिलाए आपहु कोइ न पावैगा।१४।

आपे गोपी आपे काना। आपे गऊ चरावे वाना। आप उपावहि आप खपावहि तुध लेप नहीं इक तिलरंगा।१५।

एक जीह गुण कवन वखाने। सहस फणी सेस अन्त न जाने। नवतन नाम जपै दिन राती इक गुण नाही प्रभ कहि संगा।१६।

ओट गही जगतपित सरणाइया। भय भयानक जमदूत दुतर है माइया। होह कृपाल इच्छा कर राखहु साधु सन्तन के संग संगा।१७।

दृष्टिमान है सगल मिथैना। इक मांगउ दान गोविन्द सन्तरेना। मसतक लाइ परमपद पावहु जिस प्राप्त सो पावेगा।१८।

कृतम नाम कथे तेरे जिह्वा। सत् नाम तेरा परा पूर्वला।
कहु नानक भगत पए सरणाई देह दरस मन रंग लगा।२०।

—राग मारू सोहले महला ५ शब्द ११

विष्णु सहस्र के समान इस शब्द में अनेक नाम हैं और प्राय: विष्णु के ही हैं।

[८] गुन गोविन्द गाइयो नहीं जन्म अकारथ कीन।

—श्लोक महला ६ श्लोक १

[९] कह नानक नर बावरे क्यों न भजें भगवान।

—श्लोक महला ९ श्लोक ४

[१०] कह नानक सुनरे मना सिमरत काह न राम।

—श्लोक महला ६ श्लोक ८

[११] कोटन में नानक कोऊ नारायण जिह चीत।

—श्लोक महला ६ श्लोक २४

[१२] कह नानक इस विपत में टेक एक रघुनाथ।

—श्लोक महला ६ श्लोक ५५

[१३] राम नाम उर महि गहिओ जाके सम नहीं कोइ।

—श्लोक महला ६ श्लोक ५७

[१४] अब मो कउ भए राजा राम सहाई।

—राग गौड़ी कबीर जी शब्द ४०

[१५] मुकंद मुकंद जपहु संसार। —राग गौंड रविदास शब्द १

[१६] मोकउ वांह देहु वांह देह वीठला।

—राग वसंत नामदेव शब्द २

इस भांति श्री गुरुग्रन्थ साहिब और दसमग्रंथ जी में दोनों प्रकार के नाम हैं अर्थात् गौणिक तथा कार्मिक हैं। और पौराणिक भी हैं। मैंने उनमें से कुछ लिखे हैं। प्राय: पौराणिक भावनायुक्त पाठ मिलते हैं।

तीन

साकार-निराकार

साकार शब्द के अर्थ हैं, आकार वाला। निराकार शब्द के अर्थ हैं, आकार रहित। बाह्य इन्द्रियां पांच हैं। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण। श्रोत्र से शब्द, शब्दत्व आदि का ग्रहण होता है। त्वचा से स्पर्श, स्पर्श वाला द्रव्य और स्पर्शत्व आदि का ज्ञान होता है। नेत्र से रूपादिगुण और रूपवान् पदार्थ तथा रूपत्व आदि का बोध होता है। रसना से रस और रसत्व आदि का साक्षात्कार होता है। घ्राण से गन्ध और गन्धत्व आदि का प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार श्रोत्र, रसना और घ्राण से गुण का ग्रहण होता है गुणी का नहीं और त्वचा तथा नेत्र से गुण गुणी दोनों का ग्रहण होता है। शास्त्र में यह भी विवाद है, वायु त्वाच प्रत्यक्ष है वा अनुमेय है, किन्तु इस समय इस पर विचार नहीं करना है। हम मान लेते हैं, वायु का त्वाच प्रत्यक्ष है।

परमात्मा द्रव्य है, और द्रव्य का प्रत्यक्ष त्वचा और चक्षु से ही होता है। अब प्रश्न है, क्या ईश्वर का प्रत्यक्ष इन इन्द्रियों से होता है वा नहीं। यदि होता है, तब तो ईश्वर साकार है। यदि नहीं होता, तो परमेश्वर निराकार है। यह निर्णीत सिद्धांत है।

इस विषय पर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में विचार किया है इसलिये प्रथम उसे लिखता हूं।

प्रश्न—ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है, तो विना हाथ आदि साधनों के जगत को न बना सकेगा, और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता।

उत्तर—ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह ईश्वर नहीं, क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश, काल, वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीडादि सहित होवे। उसमें जीव के विना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीर-धारी हैं, इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते हैं। वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रिय-गोलक हस्त पादादि अवयवोंसे रहित है परन्तु उसकी अनन्त शक्ति, बल, पराक्रम है, उससे सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी नहीं हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उस में व्यापक है, तभी उस को पकड़ कर जगदाकार कर देता है।

प्रश्न—जैसे मनुष्यादि के मां बाप साकार हैं, उनका संतान भी साकार होता है। जो यह निराकार होते, तो इनके लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो, तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

उत्तर—यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है। क्योंकि हम अभी कह चुके हैं, कि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है। और जो स्थूल होता है, वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।"— सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८

आगे श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ लिखता हूँ।

(१) साचा रवि रहिया लिव लाई।

—राग मारु सोलहे महला १ शब्द १५। ८

(२) रूप न रेखिया मिति नहीं कीमत सबद भेद पतियाइंदा।

—राग मारु सोलहे म० १ श० १४

(३) वरना चिहना बाहरा लेखे बाझ अलख। क्यों कथिए क्यों आखीऐ जापै सचो सच। –राग मलार वार महला १ वार २४

(४) तिस रूप न रेखिया वरन न कोई गुरमती आप बुझावणिया।

—राग माझ महला ३ अष्टपदियां अष्टपदी १६

(५) तिस रूप न रेखिया घट घट देखिया गुरमुख अलख लखावणिया। —राग माझ महला ४ अष्टपदियां अष्टपदी ३४

(६) आपे जल थल वरतदा मेरे गोविन्दा रवि रहिआ नहीं दूरी जीउ। —राग गौड़ी महला ४ शब्द ६५

(७) वरना चिहना बाहरा कीमत कह न सकाइ।

—श्री राग महला ५ सब्द ५६

(८) वबा बैर न करिऐ काहूँ। घट घट अन्तर ब्रह्म समाहूँ।

—राग गौड़ी महला ५ बावन अखरी ४६

(९) जिस रूप न रेखिआ कुल नहीं जाति। पूरन पूर रहिआ दिन राती। —राग मारु महला ५ सोलहे शब्द १४

(१०) वरना चिह्ना बाहरा ओह अगम अजिता।

—राग रामकली वार महला ५ वार १६

आगे दशम ग्रंथ जी के कुछ पाठ लिखता हूं।

(११) अजात हरी, अपात हरी। अकाल उस्तुति छन्द ५७

(१२) अभेद हरी, अछेद हरी। ,, ,, ,, ५६

(१३) अखण्ड हरी, अभण्ड हरी। ,, ,, ,, ६०

(१४) न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।
न मित्रं न शत्रं न पितरं न मातरं। अकाल उस्तुति छन्द ६१

(१५) अलेखं अभेखं अजोनि सरूपं। ,, ,, ,, ६२

(१६) न जातं न पातं न रूपं न रङ्गम्। ,, ,, ,, ६५

(१७) न जन्मं न मरनं न वरनं न वियाधे। ,, ,, ,, ६७

(१८) जिह शत्र मित्र नहीं जन्म जाति।
जिह पुत्र भ्रात नहीं मित्र तात। ,, ,, ,, १२३

(१९) जिह जात पात नहीं शत्र मित्र। ,, ,, ,, १२४

(२०) जिह रंग रूप नहीं राग रेख।
जिह जन्म जात नहीं भरम भेख। ,, ,, ,, १२४

(२१) न राग रङ्ग रूप है न रोग राग रेख है।
अदोष अदाग अदग है अभूत अभ्रम अभेख है। ,, १६३

(२२) जात पात न तात जाको मंत्र मात न मित्र।
सर्व ठौर विखै रमियो जिह चक्रचिन्ह नही चित्र।
आदि देव उदार मूर्ति अगाध नाथ अनन्त।
आदि अन्त न जानिऐ अविषाद देव दुरन्त।

— अकाल उस्तुति छन्द १८२

जिसको अधिक जानने की अभिलाषा हो उसे सत्यार्थप्रकाश पढ़ना चाहिये। और सिख धर्म ग्रन्थ में जैसे यह शब्द हैं, वैसे ईश्वर अवतार कहने वाले भी हैं। उनको मैं यहां नहीं लिखता। साधारण रूप में अवतार विषय में वह शब्द लिखे हैं, वहीं देखलें।

—****—
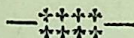
ईश्वर निर्गुण-सगुण

निर्गुण शब्द के अथ गुण रहित और सगुण शब्द के अर्थ गुण सहित हैं अर्थात् जिसमें जो गुण नहीं है, उसकी दृष्टि से वह पदार्थ निर्गुण है और जो गुण उसमें है, उसकी दृष्टि से वह पदार्थ सगुण है। यह इन शब्दों का अर्थ जानना चाहिये।

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में ऐसा लिखा है।

प्रश्न—ईश्वर सगुण है वा निर्गुण ?

उत्तर—दोनों प्रकार है।

प्रश्न—भला एक घर में दो तलवार कभी रह सकती हैं ? एक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती है ?

उत्तर—जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं। वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं, इसलिये (यद्गुणैस्सह वर्तमानं तत्सगुणम्, गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्।) जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेष आदि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

प्रश्न—संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं, अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता, तब निर्गुण और जब अवतार लेता है तब सगुण कहाता है।

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों की है। जिसको विद्या नहीं होती, वे पशु के समान यथा तथा बर्डाया करते हैं, जैसे सन्निपात ज्वर-युक्त मनुष्य अण्ड बण्ड बकता है. वैसे ही अविद्वानों के कहे वा लेख को व्यर्थ समझना चाहिये।

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७।

इस पाठ में महर्षि ने ईश्वर में जगत्-रचनादि गुणवान् होने से ईश्वर को सगुण और जड़ता, द्वेषादि न होने से निर्गुण माना है। यही सगुण और निर्गुण शब्द के अर्थ हैं।

पंडित तारासिंह जी ने गुरुगिरार्थ कोष में लिखा है:-

"निर्गुण। दे०। गुणहीन, मूर्ख, यथा "मोह निर्गुण के दातारे"। एह अर्थ ईश्वर विच नहीं लगदा।

दूर होगए हैं मायक गुण जिसमें, वह परमात्मा यथा 'निर्गुण आप सरगुण भी ओही' जो माया के मेल से रहित शुद्ध दशा में सर्व गुणों से रहित है, वही माया के मेल समय 'सरगुण' गुणों वाला होवे है अर्थात् जो शुद्ध दशा में सतो, रजो, तमो रूप मायिक गुणों से, पुनः माया के सम्बंध से होने वाले दयालुता, सर्वज्ञतादि गुणों से रहित परमात्मा है, वही मेल दशा में, सतो रजो आदि पुनः तिस के मेल से होने वाले दयालुता, भगत वत्सलतादिक गुणों वाला है।

वैष्णव मत वाले तिनां गुणा दा नाम माया बोलते हैं, केवल सतोगुण दा नाम माया नहीं कहते यांते जो परमात्मा मायिक गुणों से रहित निर्गुण है, वही उसी समय अमाय रूप शुद्ध सतोगुण के प्रताप से सर्व गुणों वाला है। सर्वथा गुणों

से हीन परमात्मा कभी नहीं होता। जो सर्वथा गुणहीन कहते हैं, उनको शास्त्र के सिद्धान्त का पूरा ज्ञान नहीं है।"

इसमें पंडित जी ने प्रथम वेदांत मतानुसार शुद्ध ब्रह्म को माया रहित और ईश्वर को माया सहित मान कर निर्गुण, सगुण की व्यवस्था की है। जो ठीक नहीं है। और वैष्णव मत के नाम से लिख दिया है। परमात्मा सर्वथा निर्गुण कभी नहीं होता।

वेदान्त सिद्धांत है, ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, और जगत कर्त्तव्य आदि गुण मायायुक्त ब्रह्म जिसे ईश्वर कहते हैं उसमें हैं ब्रह्म में नहीं।

भाई कान्हसिंह जी ने इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार लिखे हैं:-

सरगुण, सरगुन, सरगुनी। सं० सगुण। गुण सहित। माया दे तिन गुण सत्, रज, तम सहित।

सरगुण, निरगुण थापे नाउ। —राग आसा महला ५

सरगुन निरगुन निरंकार। —रागगौड़ी सुखमनि महला ५

तू निरगुन तु सरगुनी। —रागगौड़ी महला ५

निरगुण। सं० निर्गुण। माया दे सत्, रज, तम, गुणां ता रहित, शुद्ध ब्रह्म।

भाई जी ने भी वेदांत के ढङ्ग पर ही अर्थ किये हैं। इसलिये गुरुग्रन्थ साहिब के प्रमाण भी लिखे हैं, वैसे ही कुछ मैं भी लिख देता हूँ।

(१) निर्गुण सरगुण आपे सोई।

—राग माझ अष्टपदियां महला ३। अष्ट ३२।

(२) निर्गुण सरगुण हरि हरि मेरा कोई है जीउ आन मिलावै जीउ। —राग माझ महला ५ शब्द १२

(३) तूं निरगुण सरगुण सुखदाता।

—राग माझ महला ५ शब्द २८

गुरुवर में ईश्वर को निर्गुण तथा सगुण माना है। इस विषय में अनेक शब्द मिलते हैं। वह सगुण को केवल गुणों वाला न मान कर माया सहित गुणों वाला ही मानते हैं, और निर्गुण को माया रहित शुद्ध नवीन वेदान्त के अनुसार मानते हैं। पंडित तारासिंह जी, भाई कान्हसिंह जी इन शब्दों के अर्थ ऐसे ही करते हैं।

साधारण प्रजा में जिस समय ईश्वर शरीर धारण करता है, जिसे वह अवतार कहते हैं, उस समय ईश्वर सगुण है, और जब शरीर धारण न किया हो, तब निर्गुण कहलाता है। इसलिए अवतारों के शरीर माया के माने जाते हैं, अस्मदादिवत् अविद्या के नहीं।

यह दोनों पक्ष युक्तियुक्त नहीं हैं। क्योंकि सगुण शब्द के अर्थ गुणसहित हैं, इसलिए दयालुता, आदि गुणों वाला है और निर्गुण शब्द के अर्थ गुण रहित होने से अन्याय-कारिता आदि गुणों से रहित ही ठीक हैं। इसीलिये महर्षि दयानन्द जी ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में निर्गुण सगुण शब्द के ठीक अर्थ किये हैं वही माननीय हैं।

पांच

अवतार

अवतार शब्द का पारिभाषिक अर्थ है—ईश्वर का जीववत् शरीर धारण करना। जैसे राम, कृष्ण, नरसिंह, सूकर आदि अवतार माने जाते हैं। अवतार का प्रयोजन दुष्टों का नाश करना और श्रेष्ठों की रक्षा करना माना जाता है।

सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय पर विचार किया है उनका पाठ निम्न प्रकार है।

प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि 'अज एकपात्'। यजुर्वेद अध्याय ३४. ५३। 'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्' यजुर्वेद अध्याय ४०। ८। इत्यादि वचनों से सिद्ध है, कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

प्रश्न—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। गीता अध्याय ४ श्लोक ७

श्री कृष्ण जी कहते हैं, कि जब जब धर्म का लोप होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तर—यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं, और ऐसा हो सकता है, कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे, कि मैं युग-युग में जन्म ले के श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं, तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन, होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न—जो ऐसा है, तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं ?

उत्तर—वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रम जाल में फंस के ऐसी ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

प्रश्न-जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस, रावण आदि दुष्टों का नाश कैसे हो सके ?

उत्तर—प्रथम तो जो जन्मा है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस, रावणादि के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिए जन्म मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है ? और जो कोई कहे, कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिए जन्म लेता है. तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस, रावणादि का वध और गोवर्धन आदि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं ? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यति' ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मुट्ठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और

सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उस का आना-जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां ही हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा? इसलिए परमेश्वर का जाना-आना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए ईसा आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं, ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुख-सुख, जन्म-मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे। —सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७

आगे श्री गुरुग्रन्थ साहिब के वह पाठ जो इसी भाव को प्रकट करते हैं लिखता हूँ—

(१) ना तिस मातपिता सुत बंधप ना तिस काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपर सगली जोति तुमारी।
—राग सोरठ महला १ शब्द ६

(२) ना ओह मरे न होवे सोगु। देंदा रहे न चूके भोगु।
गुण एहो होर नाहीं कोइ। ना को होया ना को होइ।
—राग आसा महला १ शब्द २

(३) अवर दूजा क्यों सेविए जो जम्मे ते मरजाइ। निः फल तिनकी जीविया जि खसम न जाणहि आपणा अवरी कउ चितलाई। नानक एव न जापई करता केती दे सजाइ।
—गुजरी की वार महला ३ वार २

(४) तूं पार ब्रह्म परमेश्वर जोनि न आवही।
—राग मारु वार महला ५ वार ३

(५) सगल थीति पास डार राखी। अष्टमी थीति गोविन्द जन्मासी।

१। भ्रम भूले नर करत कचरायण। जन्म मरण ते रहित नारायण। रहाउ। कर पंजीर खवाइओ चोर। ओह जन्म न मरे रे साक्त ढोर। २। सगल पराध देहि ले रोनी। सो मुख जलउ जितु कहे ठाकुर जोनि। ३। जन्म न मरे न आवै न जाइ। नानक का प्रभ रहिओ समाइ। —राग भैरउ महला ५ शब्द १

. (६) न संखं न चक्रं न गदा न सियामं अश्चर्य रूपं रहत जन्म। नेत नेत कथंति वेदा, ऊच मूच अपार गोविन्दः वसन्ति साध-रिदयं अचुत। वुझन्त दानक वड भागीअः।

–श्लोक सहस्कृति महला ५ श्लोक ५७

(७) लख चौरासीह जीअ जोनि महि भ्रमत नन्द बहु थाको रे। भगति हेतु औतार लियो है भाग बड़ो बपुरा को रे। तुम जु कहत हउ नन्द को नन्दन नन्द सुनन्दन काको रे। १। धरनि आकाश दसो दिस नांही तब इह नन्द कहां थो रे। १। रहाउ। संकट नहीं परे जोनि नहीं आवे नाम निरंजन जाको रे। कबीर को स्वामी एसो ठाकुर जाके माई न बापो रे।

—राग तिलङ्ग कबीर शब्द १

(८) हक सच खालिक खलक मियाने सियाम मूर्ति नाहि।

—राग तिलंग कबीर जी शब्द १

आगे दशम ग्रन्थ जी का पाठ लिखा जाता है।

(६) नारायण कछ मछ हिंदुया कहित सभ कौल नाभ कोल जिह ताल में रहत है। गोपीनाथ गूज़र गोपाल सभे धेनु चारी, ऋषिकेस नाम कह महंत लहीयत है। माधव भवर अर अटेरू को कन्हैया नाम. कंस को वधैया जमदूत कहीयत है। मूढ रूढ पीटत न गूढता को भेद पावे पूजत न ताहि जाके राखे रहीयत है।

—अकाल उस्तुति छन्द ७४

(१०) विन करतार न किरतम मानो। आदि अजोनि अजै अविनासी तिह परमेसर जानो। १। कहा भयो जो आन जगत में दसक असुर हरि घाए। अधिक प्रपंच दिखाई सभन को आपहि ब्रह्म कहाए। १। भंजन गढन समरथ सदा प्रभ सो किम जात गिनायो। तांते सर्वकाल के आसि के घाइ बचाइ न पायो। २। कैसे तोहि तार है सुन जड़ आप डुवियो भवसागर। छूटहु काल फास ते तब ही गहो सरण जगतागर। ३।

—हजारे शब्द राग कल्याण पादशाही १०

(११) केवल काल ई करतार। आदि अन्त अनन्त मूर्ति गड़न भंजन हार। निन्द उस्तुति जौन को सम शत्रु मित्र न कोइ। कौन वाट परीति से पथ सारथी रथ होइ।

—तिलंग काफी पादशाही १०

(१२) जो कहो राम अजोनि अजै अति, काहे कौ कौशल कुख जयोजू। काल हूँ कान्ह कह जिहको, किह कारण काल ते दीन भयोजू। सन्त सरूप विवैर कहाइ सु क्यों पथ को रथ हांक धयोजू। ताही को मान प्रभू करके जिह को कोऊ भेद न लेन लयोजू।

—१३ सवैये

(१३) क्यों कहु कृष्ण कृपानिधि है किह काज ते वधक वाण लगायो। और कुलीन उधारत जो किह ते अपने कुल नास करायो। आदि अजोनि कहाइ कहो किम देवकि के जठरागन आयो। तात न मात कहे जिह को तिह क्यों वसुदेवहि बाप कहायो। १४।

(१४) काहे को ईस महेस हि भाखत, काहे द्विजेश को ईस बखानियो। है न रघेश यदेश रमापति तै जिनको विश्वनाथ पछानियो। एक को छाड़ अनेक भजे सुकदेव परासर व्यास झुठानियो। फोकट धर्म सजे सभ ही हम एक ही को विधनेक प्रमानियो। १५।

(१५) जाल वधे सब ही मृत के कोऊ राम रसूल न वाचन पाए। दानव देव फनिन्द धराधर भूत भविष्य उपाइ मिटाए। अन्त मरे पछताइ पृथी पर जे जग में अवतार कहाए। रे मन लैलइ कैल ही काल के लागत काहू न पाइन धाए —२३ सवैये।

(१६) जाको नाम है अजोनि, कैसे कै जन्म लेत, कहां जान जन्म व्रत अष्टमी को कीनो है। जाको जगजीवन अकाल अविनासी नाम, कैसे के वधक मारयो अपयश लीनो है। निरमल निरदोष मखपद जाके नाम होत, गोपीनाथ कैसे ह्वै विरह दुःख दीन है। —भाई गुरुदास सवैये ४८५

यह शब्द सब ईश्वर के अवतार का निषेध करते हैं। किन्तु ऐसे शब्द भी न्यून नहीं हैं, जो अवतार मानते हैं। इसलिये अवतार के पोषक शब्द लिखता हूँ।

(१) तन मन सौपउ कृष्ण प्रीत।

—राग आसा अष्टपदिया महला १ अष्टपदि ४ पद ५

(२) चेतहु वासुदेव वनवाली। राम रिदे जप माली।

—राग गुजरी, अष्ट० महला १ अष्टपदि १ पद १

(३) हुकम उपाए दस औतार।

—राग मारु सोहले महला १ शब्द १६

(४) दस अवतारी राम राजा आइआ। दैता मारे धाइ हुकम सवाइआ। —राग मलार महला १ वार ३

(५) एक कृष्णंत सर्वदेवा देव देवात आत्मः। आत्मं स्री वासुदेवस जे कोई जानसि भेव। नानक ताका दास है सोई निरंजन देव। —श्लोक सहस्कृति महला १

(६) सतजुग तैं माणियो छलियो बलि बावन भाइयो। त्रेते तैं माणियो राम रघुवंस कहाइयो। द्वापर कृष्ण मुरारि कंस कृतार्थ कियो। उग्रसैन को राज अभय भगतन जन दियो।

—सवैये महला १ सवैया ७

(७) मति मलीन प्रगट भई जप नाम मुरारा।

—राग गौड़ी महला ३ शब्द ३८

(८) कवलनैन मधुरबैन कोटि सैन संग सोभ कहत मां जसोध जिसहि दही भातु खाहि जीउ।

—सवैये महला ४ ॥ १ । ६

(९) सुथर चित भगत हित भेख धरियो हरणाखसु हरियो नख विदारि जीउ २। ७।

(१०) पीत वसन कुन्द दसन प्रिय सहित कण्ठ माल मुकुट सीस मोर पंख चाहि जीउ। ३ । ८

(११) बलिह छलन सबल मलन भगत फलन कान कुअर निःकलंक बजी डंक चड़ दल रविन्द जीउ। राम रवण दुरत दवण सकल भवण कुशल करण सर्वभूत आप ही देवाधिदेव सहस मुख फनिन्द जीउ। जरम करम मछ कच्छहु अवराह जमुना कै कूल खेल खेलियो जिन गिन्द जीउ। ४। ६। —सवैये महला ४

(१२) हरि जुग जुग भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ राम राजे। हरणाखस दुष्ट हरि मारिया प्रल्हाद तराइया। अहंकारियां निन्दकां पीठ दे नामदेउ मुख लाइआ।

—राग आसा महला ४ छन्द २०।

(१३) उबरत राजाराम की सरणी।

--राग गौड़ी माला महला ५ शब्द १६२

(१४) जप मनातूं राम नारायण गोविन्दा हरिमाधो। ध्याय मना मुरारि मुकन्दे कटिए काता दुःख फाधो। दुःख हरण दीन शरण श्रीधर चरण कमल आराधिए। जम पंथ विखड़ा अग्नि सागर निमख स्मृत साधिए। कलि महहि दहता शुद्ध करता दिनसु रैण आराधो। विनवन्त नानक करहु कृपा गोविन्द गोपालमाधो।

--राग गौड़ी छन्त महला ५ शब्द १०

(१५) होए राजे राम की रखवाली। सूख सहज आनन्द गुण गावहु मन तन देह सुखाली। --राग सोरठ महला ५ शब्द ४५

(१६) हरि हरि हरि आराधिऐ होइऐ आरोग। रामचन्द की लष्टिका जिन मारिया रोग।

—राग विलावल महला ५ शब्द ६४

(१७) सुण साखी मन जप पिआर। अजामल उधरिआ कहि एकवार। वालमीकै होया साध संग। ध्रू को मिलियो हरि निसंग। १। गनिका उधरी हरि कहि तोत। गजइन्द्र ध्याइयो हरि कियो मोख। विप्र सुदामें दालद भज। रे मन तू भी भज गोविन्द। २। वधिक उधारिओ खमि प्रहार। कुविजा उधरि अंगुष्ठ धार। विदुर उधारियो दासित भाइ। रे मन तूं भी हरि ध्याइ। ३। प्रल्हाद रखि हरि पैज आप। वस्त्र छीनत द्रोपदि रखी लाज ४। धन्ने सेविआ बालबुद्धि। त्रिलोचन गुर मिल भई सिद्धि। वेगी कउ गुर कियो प्रगास। रे मन तूं भी होहि दास। ५। जैदेव त्यागिओ अहमेव। नाई उधरियो सैणसेव। ६। कबीर ध्याइयो एक रंग। नामदेव हरिजीउ वसहि संग। रविदास ध्याए प्रभु अनूप। गुरु नानकदेव आनन्द रूप।

—राग वसन्त महला ५ अष्टपदियां अष्टपदि १

(१८) मनरे प्रभुकी सरन विचारो। जिहि स्मृत गनकासी उधरी ताको जस उरधारो। अटल भयो ध्रू जाके सिमरन घर निरभय पद पाइआ। दुःख हरता इह विधि को स्वामी तैं काहे विसराइआ। १ जब ही सरन गही कृपानिधि गज गराह ते छूटा। महिमा नाम कहा लउ वरनउ राम कहत वंधन तिह तूटा। २। अजामल पापी जग जाने निमख माही निस्तारा। नानक कहत चेत चिंतामणि है भी उतरहि पारा। ३।

—राग सोरठ महला ६ शब्द ४

(१६) मन रे सरियो न एकै काजा। भजियो न रघुपति राजा
—राग सोरठ कबीर जी शब्द ३

संख्या १७ में जो भगतों के अनेक नाम आये हैं, उनमें अनेकों का भगत माल में वर्णन है। और भाई गुरदास जी ने दसवीं वार में इनका वर्णन किया है। इन सब को ईश्वर का साक्षात्कार मनुष्य साक्षात्कार के समान ही लिखा है। इस कारण ही मैंने इन शब्दों को यहां लिख दिया है

—०※०—

छः

मूर्त्ति पूजा

मूर्तिपूजा शब्द का भाव है परमेश्वर वा किसी अवतार तथा किसी आचार्य की मूर्ति लकड़, पथर, मृत्तिका, सोने, चांदी, लोहे, पीतल, तांबे अथवा अन्य किसी धातु की बनाकर, उसकी पूजा अर्थात् उसे भोग लगाना, नैवेद्य अपर्ण करना। भाव यह किसी अचेतन वस्तु में चेतनवत् व्यवहार करना मूर्ति पूजा है।

कई मूर्त्तियों के लिये सुलाना, उठाना, स्नान करवाना आदि भी किया जाता है।

भारत में प्रायः शिव और विष्णु की मूर्तियां अधिक हैं शिव की मूर्ति का स्नान, भोगादि तो होते हैं, अन्य बातें अधिक नहीं हैं। विष्णु की मूर्ति के लिये बंधन अधिक है। शिव का नैवेद्य भी सामान्य है। विष्णु की मूर्ति को भोग्य पदार्थ विशेष रूप से दिये जाते हैं। अवतारों में राम, जिसकी मूर्ति सीता सहित होती है, कृष्ण जिसकी मूर्ति राधा सहित है, लक्ष्मी-नारायण, नरसिंहादि की मूर्तियां हैं। शिव की मूर्ति शिवलिंग

के नाम से प्रसिद्ध है। और विष्णु की मूर्ति आकार से भिन्न शालिग्राम आदि भी हैं। शक्ति की मूर्तियां भिन्न देवी के नाम से बनाई जाती हैं। इसी प्रकार हनुमान जी की मूर्तियां होती हैं। इसी प्रकार नाना प्रकार से नाना प्रकार की आकृतियों द्वारा नाना देवी, देवताओं की मूर्तियां हैं।

मूर्ति में जब तक देवता का आवाहन न किया जाय, उस समय तक वह पूजा योग्य नहीं होती है। उस समय तक वह देवता नहीं धातु, काष्ठ वा पत्थर की मूर्ति ही है। जब उसमें देवता का आवाहन किया जाय तब वह पूजा योग्य हो जाती है। उसी समय वह देवता रूप से पूजी जाती है।

जिस भांति देवता का आवाहन होता है, उसी प्रकार उसका विसर्जन भी होता है। जिस समय विसर्जन किया जाय, उसके पश्चात् वह मूर्ति पूजा योग्य नहीं रहती है।

इस बात को यदि कोई साक्षात् देखना चाहे, तो कलकत्ता में दुर्गा पूजा और बम्बई में गणेश उत्सव देख सकता है। वहां हजारों मूर्तियां बनाई जाती हैं और श्रद्धालु भगत उसे क्रय कर ले जाते हैं। अपने स्थान पर लेजाकर देवता का आवाहन करते हैं। उसके पश्चात् उसकी पूजा आरम्भ होती है, नियत समय के पश्चात् देवता का विसर्जन किया जाता है। फिर उसी मूर्ति को उठाकर गाजे-बाजे के साथ कलकत्ता में गंगा में बहा देते हैं और बम्बई में समुद्र-प्रवाह किया जाता है।

यह सब मूर्तियां मिट्टी की होती हैं। मूर्ति बनने से पूर्व साधारण मिट्टी थी, मूर्ति बनने पर उसकी आकृति के अनुसार देवी वा गणेश नाम हो गया, क्रय करने के पश्चात् आवाहन हो जाने पर वह देवता बन गई। पूजा के पश्चात् विसर्जन होने

पर वह मिट्टी की आकृति मात्र रह गई और गंगा या समुद्र में डाल देने से पुनः मिट्टी हो गई।

मूर्ति को जो पदार्थ भोग रूप में दिया जाता है उसे पीछे पुजारी खाता है अथवा भक्तों में बांटा जाता है। उसे देवता का सीत प्रसाद कहते हैं। भक्त श्रद्धा से लेते हैं।

ऋषि दयानन्द जी ने मूर्तिपूजा विषयक अपने विचार सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में प्रगट किये हैं। इस लिये उनका लिखा पाठ यहां लिखना उचित समझ के लिखता हूँ।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता, इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे, तो मूर्ति के सम्मुख आ, हाथ जोड़, परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमें क्या हानि है?

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है, तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शन मात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे, तो परमेश्वर के बनाए पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसे रचना युक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं, क्या उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो तुम कहते हो, कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है, यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब यह मूर्ति सामने न होती, तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकांत पाकर चोरी, जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता : इसलिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्ति पूजा करने से सिद्ध होते हैं। अब

देखिये, जो पाषाणादि मूर्तियों को न मान कर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है, वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे-भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जानके, कुकर्म करना तो कहां रहा, किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता, क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा, तो इस अन्तर्यामी के न्याय से विना दण्ड पाए कदापि न बचूंगा। और नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता, जैसा कि मिश्री मिश्री कहने से मुंह मीठा और नीम नीम कहने से कड़वा नहीं होता, किन्तु जीभ से चाखने ही से मीठा व कड़वापन जाना जाता है।

प्रश्न—हम भी मानते हैं, कि परमेश्वर निराकार है, परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लिये। इससे उसकी मूर्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—हां हां झूठी। क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म, मरण और शरीर-धारण रहित वेदों में कहा है। तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्व-व्यापक, अनन्त और सुख-दुःख दृश्यादि गुण रहित है, वह एक छोटे से वीर्य गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आसकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। जो अचल अदृश्य जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है उसका अवतार कहना, मानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

प्रश्न—जब परमेश्वर व्यापक है, तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो:—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्।

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनाए पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है।

उत्तर—जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना कर अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है, कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो यह कितना बड़ा अपमान है। वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो वाटिका में से पुष्प, पत्र तोड़के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते ? धूप को जलाके क्यों देते ? घण्टा, घड़ियाल, झांज पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते ? अन्न, जल आदि में है, क्यों नैवेद्य धरते हो ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो, तो पाषाण, लकड़ी आदि पर चन्दन, पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो, तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते।

अब कहिये कि भाव सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है, तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायेगा, और तुम मृत्तिका में सुवर्ण, रजतादि, पाषाण में हीरा पन्नादि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत, दुग्ध, दधि आदि और धूलि में मैदा, शक्कर आदि की भावना करके उन को वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ?

और सुख की भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो ? इसलिए तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना है। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान, और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिए तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

प्रश्न—अजी जब तक वेदमन्त्रों से आवाहन नहीं करते, तब तक देवता नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है।

उत्तर—जो मन्त्र को पढ़ कर आवाहन करने से देवता आ जाता है, तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती और विसर्जन करने से चला जाता है इसका भी क्या सबूत ? और वह कहां से आता और कहां को जाता है ? सुनो अन्धो ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्र बल से परमेश्वर को बुला लेते हो, तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते ? सुनो भाई भोले-भाले लोगो ! यह पोप जी तुम को ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन-विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

प्रश्न – मूर्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है।

उत्तर—कर्म दो ही प्रकार के होते हैं, विहित, जो कर्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध—जो अकर्तव्यता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित

का अनुष्ठान करना वह धर्म उसका न करना अधर्म है, वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो, तो पापी क्यों नहीं ?

प्रश्न—देखो वेद अनादि हैं। उस समय मूर्ति का क्या काम था ? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सकते और मूर्ति का ध्यान तो कर सकते हैं। इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय। पहली सीढ़ी छोड़ कर ऊपर जाना चाहे, तो नहीं जा सकता, इसलिए मूर्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते-पूजते जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा, तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य का मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता-मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है, वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता-करता पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियां गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं, जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्टकाम नहीं।

उत्तर—जब वेद विहित धर्म और वेद विरुद्धाचरण में अधर्म है, तो पुनः तुम्हारे कहने से भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो-जो ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं, उन-उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनोः—

नास्तिको वेदनिन्दकः। मनु० अध्याय २ श्लोक ११।

मनु जी कहते हैं, जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है ....

मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता, किन्तु जो

कुछ ज्ञान है, वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं-नहीं मूर्ति-पूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। फिर उस खाई से नहीं निकल सकता, किन्तु उसी में मर जाता है। हां छोटे-छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्य-भाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं। जैसे ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है। किन्तु मूर्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ, प्रत्युत सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रह कर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके बहुत से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति रूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं, किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टि विद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं, किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा, तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

प्रश्न। साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्ति पूजा रहनी चाहिये।

उत्तर। साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्समर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता, किन्तु उसी के गुण कर्म

स्वभाव का विचार करता करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर होता, तो सब जगत का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता, जब तक निराकार में न लगावें। क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिये मूर्ति पूजन करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मान के पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है।

पांचवां—नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्र युक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चलकर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।

छठा—उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय राज्य स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।

सातवां—जब कोई किसी को कहे, कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें, तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान करता है, वैसे ही जो परमेश्वर की उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते है, उन दुष्ट बुद्धि वालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे?

आठवां—भ्रांत होकर मन्दिर मन्दिर देश देशान्तर में घूमते घूमते दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नवमां—दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं, वे उस धन को वेश्या-परस्त्री गमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दसवां—माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवां—उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा हा करके रोते रहते हैं।

बारहवां—पुजारी परस्त्री के संग और पुजारिन परपुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

तेरहवां—स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवां—जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

पन्द्रहवां—परमेश्वर ने सुगंधि युक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाये हैं, उनको पुजारी जी तोड़ ताड़ कर, न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़ कर वायु जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे हैं?

सोलहवां—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प, चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है, कि जितना मनुष्य के मल का, और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं, ऐसे ऐसे अनेकों मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं, इसलिए सर्वथा पाषाणादि मूर्ति की पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे न बचते हैं और न बचेंगे।

प्रश्न—किसी प्रकार की मूर्ति पूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्यावर्त में पञ्चदेव पूजा शब्द प्राचीन परंपरा से चला आता है, उसका अभिप्राय यही पञ्चायतन पूजा, जो कि शिव, विष्णु अम्बिका, गणेश और सूर्य की मूर्ति बनाकर पूजते हैं वह पंचायतन पूजा है वा नहीं।

उत्तर—किसी प्रकार की मूर्ति पूजा न करना, किन्तु मूर्तिमान् जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। यह पञ्चदेव पूजा पंचायतन पूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला है, परन्तु विद्याहीन मूढ़ों ने उसके उत्तम अर्थ को छोड़ कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया, जो आजकल शिवादि पांचों की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं। उनका खंडन तो अभी कर चुके हैं। यह तो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देव पूजा और मूर्ति पूजा है सुनोः—

मानो वधीः पितरं मोत मातरम् ।१। यजुः अध्याय १६, मंत्र १५

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।२।

—अथर्व कांड ११, व० ५ मं० १७

तिथिगृहानागच्छेत् ।३। अथर्व कांड १५ व० १३ मं० ६

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । ऋग्वेद मंडल ८।६१।८

मातृदेवो भव पितृ देवो भव आचार्य देवो भव
अतिथिदेवो भव। तैत्तिरीयोप० वल्ली १ अनु० ११

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभि:। मनु० अ० ३।५५
पूज्यो देववत्पति:। मनुस्मृति अध्याय ५।१५६

प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।

दूसरा पिता सत्कर्तव्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी, तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है, उसकी तन, मन, धन से सेवा करनी, चौथा अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी सबकी उन्नति चाहने वाला जगत में भ्रमण करता हुआ सत्य उपदेश से सबको सुखी करता है, उसकी सेवा करें।

पांचवां—स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिए स्त्री पूजनीय है। ये पांच मूर्तिमान देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्य उपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव पामर नरकगामी हैं।

प्रश्न—माता पिता आदि की सेवा करें, और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं?

उत्तर—पाषाणादि मूर्ति पूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढों ने इसलिए स्वीकार किया है, कि जो माता पिता आदि के सामने नैवेद्य वा भेंट पूजा धरेंगे

तो वे स्वयं खालेंगे और भेंट पूजा लेंगे, तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्ति बना, उस के आगे नैवेद्य धर, घण्टा नाद टं टं पूं पूं कर शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् 'त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि' जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे, कि तू घण्टा ले और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसे ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढों को चटक-मटक, चलक-झलक मूर्तियों को बना-ठना आप वेश्या वा भड़वा के तुल्य वन-ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मार के मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता, तो इन पाषाण प्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कार्मो में लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह कराता। --सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास

थोड़े शब्दों में ऋषि का भाव लिखता हूं। जो इस प्रकार है:-

परमेश्वर की कोई मूर्ति नहीं बन सकती, और पाषाण, काष्ठ, धातु आदि की मूर्तियों की पूजा वेदविरुद्ध है, त्याज्य है। चालाक मनुष्य मूर्तियां बना कर भोले-भाले मनुष्यों को ठगते हैं। मूर्तियों के नाम पर माल पदार्थ लेकर स्वयं भोगते हैं। मूर्तिपूजा में कोई लाभ नहीं है और हानियां अनेक हैं। इसलिये मूतिपूजा सर्वथा त्याज्य है।

आगे मैं वह शब्द लिखूंगा, जिनमें इस विषय का उल्लेख है:-

श्री गुरुग्रंथ साहिब जी और दसम ग्रन्थ जी के शब्द लिख कर पुनः सिखों के प्रतिष्ठित सिख लेखकों का मत भी संक्षेप से लिखूंगा। श्री गुरुग्रंथ साहिब में गुरुओं और भगतों के शब्द सम्मिलित हैं। इसलिए उन शब्दों में जहां गुरुओं के शब्द होंगे वहां भगतों के भी होंगे। जिससे पाठक उनके भाव को ठीक-ठीक समझ सकें।

(१) घर नाराइण सभा नाल। पूज करे रखे नावाल। कुंगू चंनण फूल चढ़ाए। पैरी पै पै वहुत मनाए। माणूया मंग मंग पहने खाइ। अन्धी कंमी अन्ध सजाइ। भुखियां देन मरदियां रखे। अन्धा झगड़ा अन्धी सथे।

—राग सारंग वार, म० १ श० ६

(२) दुविधा न पड़उ हर बिन होर न पूजउ मड़े मसाणि न जाई। त्रिषणा राच न पर घर जावा त्रिषणा नाम बुझाई। घर भीतर घर गुरु दिखाइया सहज रते मन भाई।

—राग सोरठ अष्टपदिया म० १ श० १, १

(३) पूजा सिला तीरथ बनवासा। भ्रमत डोलत भए उदासा।
मन मैले सूचा क्यों होइ। साच मिले पावे पति सोइ।

राग धनासरी अष्टपदिया म० १ शब्द २, ५

(४) नावहि धोवहि पूजहि सैला। बिन हर राते मैलो मैला।

रामकली अष्टपदिया म० १ श० ४, ३

(५) देवी देवा पूजिए भाई क्या मांगउ क्या देह।
पाहण नीर पखालिऐ भाई जल महि डूबे तेह।

राग सोरठ अष्टपदिया म० १ श० ४, ६

(६) हिन्दू मूले भुले अखुटी जांहीं। नारद कहिआ सि पूज कराहीं।
अंधे गूंगे अन्ध अन्धार। पाथर ले पूजहि मुग्ध गवार।

विहागडा वार म० १ श० २०

(७) भ्रम भूले अज्ञानी अन्धुले भ्रम भ्रम फूल तोरावै।
निरजीउ पूजहि मडा सरेवहि सब त्रिरथी घाल गवावै।

राग मलार म० ४ श० ४, ३

(८) घर महि ठाकुर मदर न आवै। गल महि पाहन लै लटकावै। भ्रमे भूला साकत फिरता। नीर विरोले खप खप मरता। १। रहाऊ
जिस पाहण कउ ठाकुर कहता। ओह पाहण लै उसको डुबता। २
गुनहगार लूण हरामी। पाहण नाव न पार गिरामी। ३

गुरु मिल नानक ठाकुर जाता। जल थल महिअल पूरण विधाता। ४। —राग सूही महला ५ शब्द ६

(६) जो पाथर कउ कहते देव। ताकि विरथा होवे सेव। जो पाथरकी पाई पाइ। ताकी घाल अजाई जाइ। १। ठाकुर हमरा सद बोलन्ता। सरब जीआ कउ प्रभु दान देता। १। रहाउ। अन्तर देउ न जाने अन्धु। भ्रम का मोहिया पावै फंधु। न पाथर बोले न किछु देउ। फोकट करम निःफल है सेव। २। जे मृतक कउ चन्दन चढावै। उससे कहहु कवन फल पावै। जे मृतक कउ विष्टा माहिं रुलाई। तां मृतक का क्या घट जाई। ३। कहत कबीर हउ कहउ पुकार। समझ देख साकत गवार। दूजै भाइ बहुत घर गाले। राम भगत है सदा सुखाले।

—राग भैरौ कबीर जी शब्द १२

(१०) कबीर ठाकुर पूज हि मोल लै मन हठ तीर्थ जाहि। देखा देखी स्वांग धर भूले भटका खाहि। १३५। —श्लोक कबीर जी

(११) कबीर पाहन परमेश्वर किया पूजै सब संसार। इस भरवासे जो रहे बूडे काली धार। १३६। —श्लोक कबीर जी।

(१२) देवी देवा पूजहि डोलहि पार ब्रह्म नहीं जाना। कहत कबीर अकुल नहीं चेतिया विखिया सिउ लिपटाना।

—राग गौड़ी कबीर जी शब्द ४५

(१३) पाती तोरे मालिनी पाती पाती जीउ। जिस पाहन कउ पाती तोरे सो पाहन निरजीउ। १। भूली मालिनी है देउ। सतगुर जागता है देउ। १। रहाउ। ब्रह्म पाती विसन डाली फूल संकर देउ। तीन देव प्रतख तोरहि करहि किस की सेउ। २। पाषाण गढ़कै मूर्ति कीनी देके छती पाउ। जे एह मूर्ति साची है तउ गड़नहारे खाउ। ३। भात पहित अर लापसी करकरा कासार। भोगन्त हारे भोगिया इस मूर्ति के मुख छार। ४।

मालिनी भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि। कह कबीर हम राम राखे कृपा कर हर राय।५—राग आसा कबीर जी शब्द १४

(१४) बुत पूज पूज हिन्दू मूए तुरक मूए सिर नाई। ओह ले जारे ओह ले गाडे तेरी गति दुहूँ न पाई। १। मनरे संसार अन्ध गहेरा। चहुं दिस पसरियो है जम जेवरा।

—सोरठ कबीर जी ?

(१:) जहिं जाइऐ तहि जल पाषाण। तू पूर रहियो सभ समान। —राग वसन्त रामानन्द

आगे दसम ग्रन्थ जी से कुछ छन्द लिखता हूं :—

(१) काहूँ लै पाहन पूज धरियो सिर, काहूँ ले लिंग गरे लटकायो। काहू लखियो हरि अवाचि दिसा महि, काहूँ पछा हि को सीस नवायो। कोऊ बुतान को पूजत है पसु, कोऊ मिरतान को पूजन धायो। कूर क्रिया उरझियो सब ही जग, श्री भगवान का भेद न पायो। —अकाल उस्तुति छन्द ३०

(२) पाइ परो परमेसर के जड़, पाहन में परमेसर नाहीं।

—विचित्र नाटक अ० १ छ० ६६

(३) पाषाण पूज हों नहीं। न भेख भीज हों कहीं। अनन्त नाम गाइ हों। परम पुरुष पाइ हों।

—विचित्र नाटक अ० ६। ३५

(४) इक विन दूसर कियो न चनार। भंजन गड़न समरथ सदा प्रभु जानत है करतार। १। रहाउ। कहा भयो जो अतिहित चितकर बहुविध सिला पुजाई। पान थके पाहन कर परसत कछु कर सिद्धि न आई। अछत धूप दीप अरपत है, पाहन कछु न खै है। ता में कहां सिध है रे जड़ तोहि कहां वहु दै है। जो जीअ होत देत कछु तुहि कर मन वच करम विचार। केवल एक सरण स्वामी बिन यों नहिं करत उधार।

—देव गंधारी पाद १० श० १

(५) काहूं लै ठोक वधे उर ठाकुर काहूँ महेस को ईश बखानियो। काहूँ कहियो हरिमन्दिर में हरि, काहूँ मसीत के बीच प्रमानियो। काहूं ने राम कहियो कृष्णा कहूँ काहूं मने अवतारन मानियो। फोकट धर्म विसार सभे करतार ही कउ करता जोअ जानियो। —सवैये पात० १०। १२

(६) काहे कउ पूजत पाहन कउ कछु पाहन में परमेसर नाहीं। ताहीं को पूज प्रभु करके जिहिं पूजत ही अघ ओघ मिटाहीं। आधि विआधि के बन्धन जे तक नाम के लेत सभे छूट जाहीं। तांही को ध्यान प्रमान सदा यह फोकट धरम करे फल नाहीं। —सवैये २०

(७) फोकट धर्म भयो फल हीन जु पूज सिला जुग कोटि गवाई। सिद्ध कहां सिल के पर से वल बुद्धि घटी नव निधिन पाई। आज ही आज समय जु वितियो नहि काज सर्यो कछ लाज न आई। श्री भगवन्त भजयो न अरे जड़ ऐस ही ऐसु सुबैस बिताई। — सवैये २१

(८) जो जुग ते करहैं तपसा कछु तोहि प्रसन्न न पाहन कै है। हाथ उठाइ भली विधि सों जड़ तोहि कछु वर दान न दै है। कौन भरोस भयो इह को कहु भीर परी नहीं आन बचै है। जान रे जान अजान हठी इस फोकट धरम सु भ्रम गवै है। —सवैये २२

(९) वेद कतेव पढ़े बहुते दिन भेद वछ तिनको नहिं पाइयो पूजत ठौर अनेक फिरियो पर एक कवे हिय मैं न वसाइयो। पाहन को अस्थालय को सिर निवाय फिरियो कछु हाथ न आइयो। रे मन मूढ़ अगूढ़ प्रभु तज आपन रूढ़ कहां उरझाइयो। —सवैये २६

(१०) ताको कर पाहन अनुमानत। महा मूढ़ कछु भेद न

जानत। महादेव को कहत सदा शिव। निरंकार का चीनत नहि भिव।
—बेनती चो० ३६२

(११) मनम कुशतनम कोहियां बुतप्रस्त। कि ओ बुत प्रस्तन्द मन बुत शिकस्त। —जफरनामा पातशाही १० छन्द ६५

अर्थ—मैं पहाड़ी मूर्ति पूजकों को मारता हूँ। क्योंकि वह मूर्ति पूजक और मैं मूर्ति भंजक हां।

टिप्पणी–भाई कन्हसिंह जी नाभा निवासी ने गुरुमत सुधाकर नाम के पुस्तक में लिखा है। यह पुस्तक दूसरी आवृत्ति सन् १६११ ई० में मुफीद आम प्रेस लाहौर में छपा था। भाई अर्जुन सिंह जीं वागडियां वाले की सहायता से छापा गया था। उसके पृष्ठ ८४ पर इस पाठ को निम्न प्रकार छापा है।

'मनम कुश्तने कोहियां पुर फितन। कि आं बुतप्रस्तन्द मन बुत शिकन।' अर्थात् मैं उपद्रवी पहाड़ियों को मारता हूं क्योंकि वह मूर्ति पूजक हैं और मैं मूर्ति खंडक हां।

इस पाठ में भाई जो ने पूर्वार्ध में 'बुतप्रस्त' शब्द को पुरफितन से बदला है। और अर्थ उपद्रवो किया है। पुरफितन के अर्थ उपद्रवी ही हैं। किंतु पाठ बदलने में कोई हेतु नहीं बताया है। और मेरे पास जो दसम ग्रंथ जी की प्रति है, उसमें बुतप्रस्त ही पाठ है। और वही ठीक प्रतीत होता है। क्योंकि उत्तरार्ध में बुतप्रस्त को हेतु माना है। यदि पाठ पुरफितन होता, तो गुरु जी लिखते, वह उपद्रवी हैं और मैं शान्ति चाहता हूं। किन्तु ऐसा न लिख साफ लिखा है। वह मूर्ति पूजक हैं और मैं मूर्ति भंजक हूँ।

पाठकों को जानने के लिये यह उद्धरण लिख दिया है। ठीक क्या है वा क्या होना चाहिये, इसका ठीक-ठीक निश्चय गुरुवाणी के विद्वान् ही कर सकते हैं।

इस प्रकार श्री गुरुग्रन्थ साहिब और दसम ग्रन्थ जी में अनेक शब्द इस प्रकार के हैं। आगे अन्य प्रतिष्ठित सिखों का पाठ लिखता हूं, ताकि निश्चय करना सहल हो।

(१) किसे पुजाई सिला सुन्न कोई गोरी मढी पुजावै।
तन्त्र मन्त्र पाखंड कर कलह क्रोध वह वाद वधावै।
आपोधापी होइके न्यारे न्यारे धरम चलावै।
कोई पूजे चन्द सूर कोई धरती आकास मनावै।
पउण पाणी वैसन्तरो धरम राज कोई त्रिपतावै।
फोकट धरमी भ्रम भुलावै। –भाई गुरदास दियां वारां १, १८

(२) पाहन की प्रतिमा को अन्ध कन्ध है पुजारी, अन्तर अज्ञान मति ज्ञान गुरु हीन है। भाई गुरदास जी के कवित्त ४८५

(३) पंडित तारासिंह जी पटियाला निवासी ने गुरमत निर्णय-सागर नाम की पुस्तक लिखी है। उसके दसवें तरंग में मूर्ति पूजा पर विचार किया है उसका पाठ इस प्रकार है—

"वेद में जगन्नाथ, पद्मनाम, श्री रंग आदि विष्णु की पाषाण मूर्तियों के इसी भांति शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य की मूर्तियों के श्रुति में कहीं नाम नहीं लिखे। इसी प्रकार मुख नासि-कादि सहित वदरीनारायण आदि मूर्तियां और मुख नासिकादि रहित सालिग्राम, नरवदेश्वर, गोमति, चक्र आदिकों के नाम तथा स्वरूप और स्थान वेद में कहीं नहीं लिखे। इसलिये मोक्ष की इच्छा वाला पुरुष वाह्य विग्रह का पूजन त्याग के हृदय में ही अरचन करे। अन्य श्रुतियों में जहां इष्टापूर्त्त कर्म कहे हैं अग्निहोत्र, तप, संतोष, वेद-पाठ, अतिथि सेवा, बलिवैश्वदेव यह कर्म इष्ट हैं, वापी, तड़ाग, देवमन्दिर, अन्नसत्र, बाग यह पूर्त हैं। भगत लोग मूर्ति स्थापना बिना देवस्थान बनवावें। यह पूर्त कर्म में देव मन्दिर शब्द का भाव है। गुरुयों ने ताकी, मूर्तिपूजा की रीति

निजमत में नहीं चलाई किन्तु वेद का तात्पर्य जो उपासना, ज्ञान में है, वही बताया। इस प्रकार वैदिक मत की प्रवृत्ति की ओर दसम गुरु ने जो दुर्गा का आवाहन किया, वह दुर्गा की पाषाण की मूर्ति नहीं पूजी, किन्तु एकान्त स्थान में बैठ के, अकाल के चरण शरण में रहने वाली जो शक्ति भगवती है, उसका आराधन किया। परमेसर रूप सालगराम हमारे हाथ में प्राप्त हुआ है, जो सबके वांछत फल देने वाला है, उसी में है, पाषाण रूप मूर्ति में नहीं। यदि मूर्ति में भाव माना जाय, तो गुरुयों और भगतों के जो मूर्ति पूजा निषेधक शब्द हैं। वह निरर्थक हो जायेंगे जो इस प्रकार हैं—

हिन्दू मूले भूले अखुट जांही। नारद कहिआ सि पूज कराहीं।
अन्धे गूंगे अन्ध अन्धार। पाथर ले पूजहि मुग्ध गवार।
ओह जां आप डुबे तुम कहां तरावनहार।

—वार विहागड़ा महला १ श० २०

देवी देवा पूजिऐ भाई क्या मांगहु क्या देह।
पाहण नीर पखालिऐ भाई जलमहि वूडहि तेह।

—राग सोरठ अष्टपदिया महला १ शब्द ४

यह शब्द पूर्व लिखा गया है, वहां ही देख लें।

इसलिये मूर्ति पूजन में तात्पर्य नहीं और मूर्ति पूजा हानि-कारक भी है,

१ जैसे, जिस किसी ने चक्रवर्ती राजा को ग्राम पति जाना, वह उसकी दया का पात्र नहीं हो सकता, प्रत्युत न्यूनता जानने से कोप का पात्र होगा। इसी प्रकार जो व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर को, थोड़े स्थान में रहने वाली जड़ मूर्ति में समझेगा, उस पर उसकी प्रसन्नता होनी कठिन है।

२ जैसे कोई बालक सच्चे पिता के सम्मुख मृत्तिका, पाषाण

की मूर्ति रूप पिता को जन्मदाता जानकर पूजा करे, तो वह सच्चे पिता की प्रसन्नता का पात्र नहीं होता, वैसे ही मूर्ति पूजक भी सच्चे पिता परमात्मा की प्रसन्नता के पात्र नहीं हो सकते। क्योंकि मूर्ति में परमेश्वर अपने सगुण विग्रहवत् अपना प्रवेश नहीं रखता, यदि रखता हो, तो जो छाती पर पग रख कर मूर्ति बनाते हैं, उनको भक्षण कर ले, और भक्षण नहीं करता है इसलिये उसमें उसका प्रवेश नहीं है।

यदि कोई कहे, प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् प्रवेश होवे है, सो भी सम्यक् नहीं। क्योंकि यदि प्राण प्रतिष्ठा से प्रवेश होवे, तो राम आदि का जो स्वभाव है, उसमें से कुछ तो मूर्ति में होवे ? और किंचित् भी नहीं होवे है। उनकी भोग्य वस्तु को, वस्त्रों को, भूषणों को चोर चोरी करके ले जावे हैं। वह उनको हटाता नहीं, इसलिये मूर्तियों में देवता का प्रवेश वास्तविक नहीं होता है। वास्तव में वह मूर्ति निरजीव है, जड़ है, जड़ का पूजन पुराणों में भी तामस भक्ति लिखी है, इसलिये वेद के तात्पर्य हीन मूर्ति पूजा सर्वथा त्याज्य है।—"

पंडित तारासिंह जी ने पंजाबी भाषा में लिखा है। उसकी नागरी वा हिन्दी मैंने बनाई है। पण्डित जी मूर्ति पूजा को सर्वथा वेद विरुद्ध मानते हैं और गुरुमहाराज के सिद्धांत विरुद्ध भी मानते हैं, यह तो निर्णीत है। किन्तु गुरु गोविन्दसिंह जी के विषय में जो दुर्गा पूजा में समाधान किया है। 'कि अकाल चरण शरण की शक्ति भगवति' का आराधन किया था, यह चिन्तनीय है। यदि वह कुछ भी न लिखते तो अच्छा होता।

४ भाई कान्हसिंह जी गुरमत प्रभाकर के पृष्ठ ६०३ पर लिखते हैं—

"'जड़ अथवा चेतन सृष्टि नूं सिरजनहार तुल्य इष्ट मान

कर पूजण दा नाउं मूर्ति पूजा है, जिसदा सिख धर्म विच परम निषेध है।

५ भाई संतोष सिंह जी गुरु प्रताप सूर्य प्रकाश ऋतु पांच अध्याय ३८ में लिखते हैं

"असुर भूत की सेवा तजे। पाहण की पूजा नहि जजे।
पाहन पूजा कलिका भाउ। मढी मसाणी भूठा सुआउ।

जिन पुस्तकों के पाठ मैंने लिखे हैं। उन पुस्तकों में इसी भाव के पाठ और भी हैं, किन्तु मैं इतने पाठ ही पर्याप्त समझता हूँ

इसके आगे कुछ ऐसे पाठ भी लिखना उचित होगा, जो इसके विपरीत हैं। ताकि पाठकों को निश्चय करने में सरलता हो।

(१) दूध कटोरै गड़वै पानी, कपल गाइ नामे दुह आनी। १।
दूध पीओ गोविंदराइ, दूध पीओ मेरो मन पति आइ।
नाहीत घर को बाप रिसाइ। १। रहाउ।
सोइन कटोरी अमृत भरी, लै नामै हरि आगै धरी। २।
एक भगत मेरे हिरदय बसै, नामे देखि नारायण हसै। ३।
दूध पीआल भगत घर गइआ, नामे हरि का दरसन भइआ। ४।
—राग भैरउ नामदेव शब्द ३

(२) इह विधि सुनके जाटरो उठ भगती लागा। मिले प्रतख गुसाईआं धन्ना, बड़ भागा। —राग आसा धन्ना शब्द २

इन दोनों शब्दों पर भाई गुरदास जी ने भी लिखा है और भाई गुरदास जी जो भाव प्रकट करते हैं, वह मूर्ति पूजा सिद्ध करते हैं। उनका पाठ इस प्रकार है।

कम किते पिउ चलिआ नामदेव नों आख सिधाया।
ठाकुर दी सेवा करी दुद्ध पीआवण कह समझाया।
नामदेव इसनान कर कपल गाई दुहके लै आया।
ठाकुर नो न्हावाल के चरणोदक लै तिलक चढाया।

हथ जोड़ विनती करे दुद्ध पीअहु जी गोविन्द राया।
निहचउ कर आराधिया होइ दयाल दरस दिखलाया।
भरी कटोरी नामदेव लै ठाकुर नों दुद्ध पीआया।
गाइ मुई जीवालीओन नामदेव दा छप्पर पाया।
फेर देहुरा रक्खिओन चारवरन लै पैरी पाया।
भगत जनां दा करे कराया।

—भाईगुरदासदीआं वारां, वार १०। ११।

इसमें नामदेव का दूध पिलाना, नामदेव को मूर्ति में दर्शन होने का वर्णन है। आगे, कुछ अन्य काम, छप्पर बनाना, देहुरा फेरना आदि वही बातें हैं, जो भक्तमाल में मिलती हैं। इस भाव के शब्द श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी में भी हैं। अगला शब्द भी वैसा ही है। यथा—

दरसन वेखण नाम देव भलके उठ त्रिलोचन आवै।
भगति करन मिल दुइ जणे नामदेव दर चलत सुणावै।
मेरी भी कर वेनती दरसन देखां जे तिस भावै।
ठाकुर जी नों पुछि ओस दरसन किवें त्रिलोचन पावै।
हसके ठाकुर बोलिआ नामदेव नों कहि समझावै।
हथ न आवे भेट सो तुस्स त्रिलोचन मैं मुंहि लावै।
हउ अधीन हां भगत दे पहुंचन हंघां भगति दावै!
होइ विचोला आण मिलावै।—भाई गुरदास दीआं वारां १०।१२

इस पाठ में भी मूर्ति में प्रगट होने का भाव है।

बाह्मण पूजे देवते धन्ना गऊ चरावण आवै।
धन्ने डिठा चलत एह पुच्छे वाहमण आख सुणावै।
ठाकुर दी सेवा करे जो इछे सोई फल पावै।
धन्ना करदा जोदड़ी मैं भी देह इक जे तुध भावै।
पत्थर इक पलेट कर दे धन्ने नों गैल छड़ावै।

ठाकर नों न्हावालकै छाह रोटी लै भोग चढ़ावै।
हथ जोड़ मिन्नत करै पैरीं पै पै बहुत मनावै।
हऊ भी मुंह न जठालसां तू रुठा मैं किहुन सुखावै।
गोसाईं परतख होइ रोटी खाइ छाहि मुहि लावै।
भोला भाउ गोविन्द मिलावै। –भाई गुरदासदीआं वारां १०।१३

इसमें मूर्ति के स्थान पर ब्राह्मण ने धन्ने को पत्थर दिया। उसमें किसी ने देवता का आवाहन भी नहीं किया, उससे ही धन्ने को भगवान् का साक्षात्कार हुआ, और धन्ने द्वारा दी गई छाछ रोटी उसने खाई। इसका वर्णन है।

यह पाठ मूर्तिपूजा को सिद्ध करते हैं, इस कारण इन पर विचार होना आवश्यक है।

मेरी सम्मति यही है गुरु जी का सिद्धान्त मूर्ति पूजा के विरुद्ध ही है। वह मूर्ति पूजक न थे।

कई लोग प्रश्न करते हैं, सिखों में श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी की पूजा मूर्ति समान ही होती है। क्या वह मूर्ति पूजा नहीं है?

इस विषय में जो सिखों का सिद्धान्त मैंने सुना है, पढ़ा है, वह लिखता हूं। सिख श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी को, गुरु की देह मानते हैं, वह यह पाठ वतलाते हैं।

आज्ञा भई अकाल की तभी चलायो पंथ।
सब सिखन को हुक्म है गुरु मानियो ग्रंथ।
गुरु ग्रन्थ को मानियो, प्रगट गुरां की देह।
जाका हिरदे सुध है खोज सबद में लेह।

यह पाठ किसी गुरु का नहीं, जिन सिखों ने सिखों के रहित-नामे लिखे, उन्होंने यह लिखा है। नामधारी, निरङ्कारी सिखों को छोड़ कर शेष सब सिख इसे मानते हैं। इस प्रकार श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में उनकी भावना गुरु की देह की है।

यह भावना मुख्यतया उस समय स्थिर होती है जब कोई सिख श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की भेंट देकर उसे लाकर अपने गृह वा गुरद्वारे में रखता है। अथवा जिस समय भेंट देकर प्राप्त कर लेता है। यदि ऐसा न माना जाय, तो कठिनाई है। क्योंकि पुस्तक के छपते समय, बांधते समय सत्कार होना कठिन ही नहीं असम्भव है। पहले सिख धूप, आरती, चंवर आदि करते थे और भोग भी लगाते थे किन्तु इस समय शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने जो 'सिख रहित मरयादा' नामक पुस्तक लिखी है, उसमें इन बातों का निषेध है। यथा—

(३) श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी नूं सनमान नाल प्रकासिया पढ़िआ अते संतोखिआ जावे। प्रकास लई जरूरी है, कि स्थान साफ सुथरा होवे। ऊपर चांदनी होवे, प्रकाश मन्जी साहिब ते साफ सुथरे वस्त्र विछाके कीता जावे। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी दी देह नूं संभाल के प्रकाशन लई गदेले आदि सामान वरते जाण अते ऊपर लई रुमाल होवे। जद पाठ न हुन्दा होवे, तां उते रुमाल पिआ रहे। प्रकाश वेले चौंर भी चाहिये।

स। ऊपर दसे सामान तों इलावा धूप या दीवे मचाके आरती करनी, भोग लाउण, जोतां जगाउणीआ, टल खडकाउणे आदि कर्म गुरमत अनुसार नहीं। हां स्थान नूं सुगन्धित करन लई, फुल, धूप आदि सुगन्धीआं वरतणीआं विवरजत नहीं। कमरे अन्दर रोशनी लई तेल, घी जां मोमबत्ती, बिजली, लम्प आदि जगा लैणे चाहीदे हन। पृष्ठ ४

भाई रणधीरसिंह जी ने किसी समय मुझे एक पुस्तक दी थी। जिसमें यही विषय था कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की मूर्ति पूजा नहीं है यह तो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में गुरु की देह की भावना करके उसका सत्कार है। यही सिखों के विचार हैं। वह इसे मूर्ति पूजा नहीं मानते हैं।

सात

जीव

जीव शरीरधारी माना जाता है। शरीर भोगायतन अर्थात् भोग भोगने का स्थान है। शरीर जड़ है और जीव चेतन है। शरीर सादि सान्त है और जीव अनादि अनन्त है। शरीर में रह कर जीव जैसे भोग भोगता है वैसे कर्म भी करता है। यह संसार जीव के कर्म करने और उनका फल भोगने का क्षेत्र है। शरीर के नाश समय अर्थात् मृत्यु समय जीव शरीर से पृथक् हो कर अपने कर्मानुसार दूसरे शरीर को प्राप्त करता है इसी का नाम पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म पर पृथक् लिखा जायगा।

सत्यार्थप्रकाश के तीसरे और सातवें समुल्लास में जीव विषयक लिखा है, सत्यार्थप्रकाश का पाठ आगे लिखता हूँ—

"इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गानि।

न्याय०। अ० १। आ० १। सूत्र १०

जिसमें (इच्छा) राग (द्वेष) वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख (ज्ञान) जानना गुण हों, वह जीवात्मा कहाता है। वैशेषिक में इतना विशेष है–प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकार-सुखदुखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि।

वै० अ० ३। आ० २। सूत्र ४

(प्राण) भीतर से वायु का निकलना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन

विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्त-र्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख दुख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिंग अर्थात् कर्म और गुण हैं। —सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र।

उत्तर—अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

प्रश्न - स्वतन्त्र किस को कहते हैं।

उत्तर---जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तः-करणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो, तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों, तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक-स्वर्ग अर्थात् दुःख-सुख की प्राप्ति भी ईश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्र विशेष से किसी को मार डाला, सो वही मारने वाला पकड़ा जाता है, और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने साम-र्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःखरूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

प्रश्न— जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य

न देता, तो जीव कुछ भी न कर सकता, इसलिये परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

उत्तर –जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है, जैसा ईश्वर और जगत् का उपदान कारण नित्य है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन. वचन. कर्म से पाप-पुण्य करता है, वह भोगता है, ईश्वर नहीं। जैसे किसी करीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया. उसकी दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई. उससे किसी सिपाही ने तलवार ले ली, फिर उससे किसी को मार डाला। अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनने वाले और तलवार को पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता, किन्तु जिसने तलवार से मरा, वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीर आदि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उसके कर्मों का भाक्ता नहीं होता, किन्तु जीव को भुगाने वाला होता है। जो परमेश्वर कर्म करता, तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इस लिए जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है, वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है।

प्रश्न—जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है।

उत्तर—दोनों चेतन स्वरूप हैं, स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सबको नियम में रखना, जीवों को पाप, पुण्यों के फल देना आदि धर्म युक्त कर्म हैं और जीवों के सन्ता-

नोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्प विद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्य ज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं और जीव के—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।

न्याय० १।१।१०

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुखेच्छा-द्वेषप्रयत्नाश्चात्मानो लिंगानि। वैशेषिक।३।२।४

(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक, पहचान ये तुल्य हैं, परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राण वायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर लेना (निमेष) आंख को मीचना (उन्मेष) आंख को खोलना (मन) निश्चय, स्मरण और अहंकार करना (गति चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों का चलना (अन्तर्विकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि गुण होना, ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न है। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्यों कि वह स्थूल नहीं है। जब तक आत्मा देह में होता है, तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हों और न होने न हों वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है। वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।

सत्यार्थप्रकाश सातवां समुल्लास।

आर्योद्देश्यरत्नमाला में जीव का स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

जीव का स्वरूप। जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है, वह जीव कहाता है। रत्न ५७

इन पाठों में महर्षि ने जीव का वर्णन किया है। सत्यार्थ-प्रकाश में और प्रकार से भी जीव के स्वरूप पर विचार किया है। उसे यहां लिखना उचित न समझ कर नहीं लिखा।

आगे श्री गुरु ग्रन्थ साहित्र में से जीव परक कुछ शब्द लिखे जायेंगे।

(१) उडियां हंस दसाइ राह। आइया गइया मुहिआ नाउ।
—राग माझ वार म० १ वार १

(२) जीउ पाइ तन साजिया रखिया बणत बणाइ।
अखीं देखे जिह्वा बोले कन्नी सुरत समाइ।
पैरी चले हथीं करणा दित्ता पैने खाइ।
जिन रचि रचिआ तिसहि न जाणौ अन्धा अन्धा कमाइ।
—वार माझ म० १ वार २

(३) जो आवहि से जाहि फुनि आइ गए पछुताहि।
लख चौरासीह मेदनी घटै न वधै उताहि।
—राग रामकली म० १ दखणी ओकार ४३

(४) सुंञी देह डरावणी जा जीउ विचहु जाइ।
--श्री राग महला १ शब्द १४

(५) न जीउ मरै न डूबै तरै। —राग गौडी महला १ शब्द २

(६) हंस चलिया तू पिछे रहीएह छुटड़ होइ अहि नारी।
—राग गौड़ी महला १ शब्द १३

(७) काइया हंस क्या प्रीति है जि पइआ ही छड जाइ।
एसनो कूड बोल के खवालिऐ जि चलदिआं नाल न जाइ।
--गुजरी वार मह० ३ वार ७

(८) कहु नानक इह जीउ करण बंध होई।
--राग भैरउ महला ३ शब्द १

(६) जीउ पाइ पिंड जिन साजिय। दिता पैनण खाण।

—राग सोरठ महला ५ शब्द ४४

(१०) दुलभदेह पाई वडभागी। नाम न जपहि ते आत्म घाती।

—राग गौड़ी महला ५ शब्द १११

(११) मरण हार एह जीअरा नाहीं।

—राग गौड़ी महला ५ शब्द ११२

(१२) ओह वैरागी मरै न जाइ। हुकमै वधा कार कमाइ।

—राग आसा महला ५ शब्द ८२

(१३) ना जीउ मरे न कबहूँ छीजै।

—राग वडहंस महला ५ शब्द ६

(१३) जागि लेहु रे मना जाग लेहु कहा गाफल सोइआ।
जो तन उपजिया संग ही सो भी संग न होइआ।
मात पिता सब बंध जन हित जासउ कीना।
जीव छुटकियो जब देहते डार अग्नि में दीना।

—राग तिलंग महला ९ शब्द २

(१४) लख चउरासीह जोनि भ्रम आइयो।

—राग गौडी कवीर जी शब्द ६२

(१५) लट छिटकाए तिरीआ रोवे हंस अकेला जाई।

—राग आसा कवीर जी शब्द ६

(१६) मरघट लउ सब लोग कुटंब भइयो आगे हंस अकेला

—राग सोरठ कवीर जी शब्द २

(१७) काचे करवे रहे न पानी। हंस चलिश्रा काइश्रा कुमलानी। —राग सूही कवीर जी शब्द २

(१८) कह कवीर एह राम की अंस। जस कागद पर मिटै न मंस। —राग गौड कवीर जी शब्द ५

(१८) पंच किरसानवा भाग गए लै वांधियो जीव दरवारी।
--मारू कवीर जी शब्द ७

(१६) जल की भींति पवन का थंभा रक्त बूंद का गारा।
हाड़ मास नाड़ी का पिंजर पंखी वसे विचारा।
—राग सोरठ रविदास शब्द ६

(२०) हंस चलसी डूंमणा अहितन ढेरी थीसी।
—राग सूही फरीद जी शब्द २

इन सब शब्दों में जीव का वर्णन है। इनके अतिरिक्त जीव विषयक और शब्द भी हैं। मैं इतने ही पर्याप्त मानकर इसे समाप्त करता हूँ इनमें जीव को न मरने वाला, कर्म करने वाला आदि गुण युक्त लिखा है।
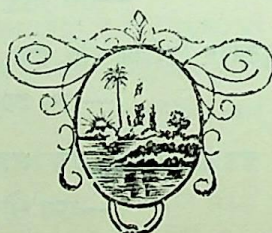
आठ

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म शब्द का भाव है—इस शरीर को छोड़ कर पुनः जीव का दूसरे शरीर को प्राप्त करना। वैदिक सिद्धान्त में पुनर्जन्म का सिद्धांत माना जाता है।

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में इस विषय पर भी विचार किया है। उसमें से कुछ लिखता हूं। विशेष रुचि वाले वहां ही पढ़ें।

प्रश्न—जन्म एक है वा अनेक ?

उत्तर—अनेक

प्रश्न—यदि अनेक हों, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं ?

उत्तर—जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिए स्मरण नहीं रहता और जिस मन से ज्ञान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्वजन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और जाग्रत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, तब जाग्रत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता। और तुम से कोई पूछे, कि बारह वर्ष के पूव तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नवम दिन दस बजे पर पहली मिनट में तुमने क्या

किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर, किस ओर किस प्रकार का था ? और मन में क्या विचार था ? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्वजन्म की बातों के स्मरण में शंका करना केवल लड़कपन की बात है और जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव सुखी है, नहीं तो सब जन्मों के दु:खों को देख देख दुखित होकर मर जाता।......

प्रश्न—मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एकसा है वा भिन्न जाति के ?

उत्तर—जीव एक से हैं, परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

प्रश्न—मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं ?

उत्तर– हां जाता आता है, क्योंकि जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून होता है। तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य-पाप बराबर होता है, तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इसमें भी पुण्य पाप के उत्तम मध्यम, निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीर आदि सामग्री वाले होते हैं, और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है, पुनः पाप-पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोग कर फिर भी मध्यस्थ पुरुष के शरीर में आता है। जब शरीर से निकलता है। उसी का नाम मृत्यु और शरीर के साथ संयोग होने का नाम जन्म है। —सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ६।

आर्योद्देश्य रत्नमाला में जन्म, मरण इस प्रकार लिखा है।

(१२) जन्म—जिसमें किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म करने में समर्थ होता है। उसको जन्म कहते हैं।

(१३) मरण—जिस शरीर को प्राप्त होकर जीव क्रिया करता है, उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है, उसको मरण कहते कहते हैं।

पुनर्जन्म विषय में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के शब्द आगे लिखे जाते हैं।

(१) इह जीव बहुते जन्म भ्रमिआ ता सतगुर शब्द सुणाइआ।
—आसा दी वार महला १ वार ४

(२) हउमै एई बंधना फिर फिर जोनि पाहि।
—राग आसा वार महला १ वार ७

(३) जिउ आरणि लोहा पाइ भन्न घड़ाइऐ। तिउ साकत जोनि पाइ भवे भवाइऐ। —राग सूही काफी महला १ शब्द ४

(४) जुड़ जुड़ बिछुड़े बिछुड़ जुड़े। जीवि जीवि मुए मुए जीवे।
केतियां के बाप केतियां के बेटे केते गुरु चेले हूए।
आगे पाछे गणत न आवे क्या जाति क्या हुण हुए।
—राग सारंग वार महला १ वार ३

(५) बहु जोनि भउदा फिरे जिउ सुञे घर काउ।
—श्री राग महला ३ शब्द ४३

(६) मन मुख करम कमावणे हउमै जले जलाइ।
जमण मरण न चूकई फिर फिर आवे जाइ
—श्री राग अष्टपदिया महला ३ अष्टपदि २३

(७) वृथा जन्म गवाइया मर जमहि वारो बार
—श्री राग अष्टपदिया महला ३ अष्टपदि २५

(८) जम का फाहा गलहु न कटिऐ फिर फिर आवे जाइ।
मन मुख किछु न सूझै अंधुले पूर्वलिखिया कमाइ।
—श्री राग की वार महला ३ वार ६

(९) लख चउरासीह भ्रमदे मन हठ आवे जाइ। गुर का शब्द न चीनिओ फिर फिर जोनि पाइ।

राम गौडी महला ३ शब्द ३६

(१०) ऐथे नावहु भुलिया फिर हथ किथाउ न पाइ।
जोनि सभ भवाइअन विष्टा माहि समाइ।

— राग मारू महला ३ शब्द २

(११) ओइ फिर फिर जोनि भवाइअहि विच विष्टा कर विकराला। —श्री राग महला ४ शब्द ६६

(१२) जिन दरसन सतगुर सतपुरुष न पाइआ ते भाग हीण जम मारे। ते सूकर कूकर गर्दभ पवहि गरभ जोनि दयि मारे महा हत्यारे। –राग गुजरी महला ४ शब्द ३

(१३) जिन हरि हरि नाम न चेतियो ते भाग हीण मर जाइ। ओहि फिर फिर जोनि भवाइ अहि मर जमे आवे जाइ।

—राग मारू महला ४ शब्द ३

(१४) लख चौरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनम पाइ ओही।

—श्री राग महला ५ शब्द ६२

(१५) कई जनम भए कीट पतंगा।
कई जनम गज मीन कुरंगा।
कई जनम पंखी सर्प होइओ।
कई जनम हैवर बृख जोइयो।१।
मिल जगदीस मिलन की वरीया।
चिरंकाल एह देह संजरीया।१। रहाउ
कई जनक सैल गिरि करिआ।
कई जनम गरभ हिरिखरिया।

कई जनम साख कर उपाइआ।

लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ।२।

—राग गौडी महला ५ शब्द ७२

(१६) अनिक जनम बहु जोनि भ्रमिआ बहुर बहुर दुःख पाइआ। —गौडी वैरागण महला ५ शब्द १३०

(१७) जो जो जोनि आइओ तिह तिह उरझाइओ माणस जनम संजोग पाइआ।

—राग धनासरी अष्टपदियां महला ५ अष्ट० १

(१८) अस्थावर जंगम कीट पतंगा अनिक जनम किए बहुरंगा।
एसे घर हम बहुत बसाए। —राग गौडी कबीर जी श० १३

(१६) परधन परतन परती निन्दा पर अपवाद न छूटै।
आवागवन होत है फुनि फुनि इह परसंग न तुटै।
—राग रामकली कबीर जी शब्द ८

(२०) चारि पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गई है।
—राग गुजरी कबीर जी १

(२१) भ्रमत फिरत बहु जनम बिलाने तन मन धन नहीं धीरे।
लालच बिख काम लुबधराता मन बिसरे प्रभ हीरे।
—राग आसा धन्ना शब्द १

इस प्रकार पुनर्जन्म के कथन करने वाले अनेक शब्द हैं।

नौ

वेद

संसार की पुस्तकों में वेद सबसे पुरानी पुस्तक है। यह बात निर्विवाद है। वेद में किसी सम्प्रदाय वा पन्थ का उल्लेख नहीं है। इसलिये वेद मनुष्य मात्र के लिए है। वेद धर्म ग्रन्थ है। वह मनुष्य को उसका धर्म सिखाता है।

वेद संसार के आरम्भ में ऋषियों द्वारा प्रगट हुआ, अर्थात् परमात्मा ने ऋषियों के हृदय में वेद ज्ञान दिया। इस कारण वेद किसी मनुष्य के बनाये हुये नहीं, वेद ईश्वर का ज्ञान है।

वेद चार हैं, उनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं।

वेद चार ऋषियों पर प्रगट हुये हैं। उनके नाम, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा हैं। अग्नि पर ऋग्वेद, वायु पर यजुर्वेद, आदित्य पर सामवेद और अङ्गिरा पर अथर्ववेद प्रकट हुआ।

अग्नि, वायु भूतों के नाम भी हैं, परन्तु यहां यह ऋषियों के नाम हैं, भूतों के नहीं। इसी प्रकार आदित्य भी सूर्य का नाम न होकर एक ऋषि का नाम है, यह सिद्धान्त है।

वेद में जो कुछ लिखा है, वह युक्तियुक्त है, जैसा कि ऋषि कणाद ने अपने दर्शन में, 'बुद्धि पूर्वा वाक्कृतिर्वेदे' लिखा है।

एक पक्ष ऐसा भी है, जो वेदों का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ, ऐसा मानता है। परन्तु ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त है, वेद चार ऋषियों पर प्रकट हुये और ब्रह्मा ने चारों वेद पढ़े, जो चारों वेदों का

जानने वाला हो, उसकी संज्ञा ब्रह्मा है। ब्रह्मा पर वेद प्रगट नहीं हुये।

वेद स्वतः प्रमाण है, अन्य सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। वेद की प्रमाणता के लिये अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं, यह वेद की स्वतः प्रमाणता है। अन्य पुस्तक वेदानुसारी होने पर प्रमाण, वेद विरुद्ध होने पर अप्रमाण हैं, यही उनमें परतः प्रमाणता है।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में वेद विषय पर यह लिखा है—

'यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भन्तब्रूहि कतमः स्विदेव सः।

अथर्व। कांड १० प्र० २३। अनु० ४। मंत्र २०

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुये हैं, वह कौनसा देव है? इसका (उत्तर) जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है, वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

यजु० ४०, ८

जो स्वयम्भूः, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है, वह सनातन जीव रूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीति पूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

प्रश्न—परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार?

उत्तर—निराकार मानते हैं।

प्रश्न—जब निराकार है, तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

उत्तर—परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद विद्या के उपदेश करने में कुछ भी

मुखादि की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख, जिह्वा के वर्णोच्चारण अपने से भिन्न के बोध होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यापार करे विना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंद के देखो, सुनो कि विना मुख, जिह्वा ताल्वादि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्यामी रूप से उपदेश किया है। किन्तु केवल दूसरों को समझाने के लिए उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है, तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है, इस लिए ईश्वर में यह दोष नहीं आ सकता।

प्रश्न—किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ?

उत्तर—अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।

शतपथ। ११।४।२।३।

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

प्रश्न—यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। श्वेताश्व० अध्याय ६ मन्त्र १८।

इस वचन में ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ?

उत्तर ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया, देखो, मनु ने क्या लिखा है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्। मनु० १।२३

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों ऋषियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग् , यजुः, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

प्रश्न—उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया, अन्य में नहीं, इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर—वे ही चार सब जीवों में अधिक पवित्रात्मा थे, अन्य उनके सदृश नहीं थे, इसलिए पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।

प्रश्न—किसी देश भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया ?

उत्तर—जो किसी देश भाषा में प्रकाश करता, तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उन को सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने की होती, इसलिये संस्कृत में ही प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं। और वेद भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया।

प्रश्न—वेद ईश्वरकृत हैं, अन्य कृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण ?

उत्तर—जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण. कर्म स्वभाव, न्यायकारी दयालु आदि गुण वाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म; स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वर-कृत अन्य नहीं, और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो, वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्मल ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्ति रहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त, जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टि क्रम रखा है, वैसा ही ईश्वर, सृष्टिकार्य,

कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बायबल, कुरानादि पुस्तकें नहीं।

प्रश्न—वेद को ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

उत्तर—कभी नहीं बना सकते, क्योंकि विना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जगली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान नहीं होते, और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाय, तो विद्वान् हो जाते हैं, और अब भी किसी से पढ़े विना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद विद्या न पढ़ाता, और वे अन्य को न पढ़ाते, तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश, अविद्वान् व पशुओं के संग में रख देवें, तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायगा। इसका उदाहरण जंगली भील आदि हैं·········

परमात्मा से सृष्टि को आदि में विद्या, शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में होते आये।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

--योग सूत्र समाधि पाद सूत्र २६।

जैसे वर्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ ही के विद्वान होते हैं। वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ाने हारा है. क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञान रहित हो जाते हैं, वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान नित्य है। इसलिये यह निश्चित

जानना चाहिए, कि विना निमित्त नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता।

प्रश्न—वेद संस्कृत भाषा में प्रकाशित हुए, और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृत भाषा को नहीं जानते थे, फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

उत्तर—परमेश्वर ने जनाया, और धर्मात्मा, योगी, महर्षि लोग जब जब जिस जिसके अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधि स्थित हुए, तब तब परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्मा में वेदार्थ प्रकाश हुआ, तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रंथ बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रंथ होने से ब्राह्मण नाम हुआ और—

ऋषयो (मन्त्रदृष्टयः) मंत्रान्सम्प्रादुः॥ निरुक्त १।२०

जिस जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी. इसलिए अद्यावधि उस २ मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है। जो कोई ऋषियों को मंत्रकर्ता बतलावे उसको मिथ्यावादी समझें। वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं।

प्रश्न—वेद किन ग्रंथों का नाम है?

उत्तर—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मंत्र संहिताओं का, अन्य का नहीं। इसमें निम्न बातें हैं—

[१] वेद ईश्वर के दिये हुए हैं, किसी मनुष्य के बनाये हुए नहीं।

[२] वेद अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नाम के ऋषियों को दिये गये थे।

[३] वेद चार हैं। नाम ऋक् , यजुः, साम और अथर्व है।

[४] वेद धर्म पुस्तक है। मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देता है। स्वतः प्रमाण है। आगे यह लिखा जायगा, श्री गुरुग्रंथ साहिब जी इस विषय में क्या कहते हैं? वेद ईश्वर के दिये हुए हैं।

[१] ओंकार ब्रह्मा उत्पति। ओंकार किया जिन चिति।
ओंकार सैल जुग भए। ओंकार वेद निरमए।
ओंकार शब्द उधरे। ओंकार गुरमुखि तरे।

—राग रामकली महला १ ओंकार शब्द १

वेद ईश्वर के दिये हैं और चार हैं—

[२] चउथ उपाए चारे वदा। खाणी चारे वाणी भेदा।

—राग बिलावल महला १ थिति।

[३] चचे चार,वेद जिन साजे चारे खाणी चार जुगा।

—राग आसा महला १ पटी लिखी शब्द ६

[४] ऊर्ध मूल जिस साख तलाहा चार वेद जित लागे।

—गुजरी अष्टपदियां मह० १ अष्ट० १

[५] साम वेद, ऋग, जजुर, अथर्वण। ब्रह्मे मुख माइया है त्रैगुण। ताकी कीमत कह न सकै को तिउ बोले जिउ बोलाइदा।

—मारु सोलहे महला १ शब्द १७

[६] ओंकार उत्पाती। किया दिनस सभ राती।
वण तृण त्रिभवन पाणी। चार वेद चारे खाणी।
खंड दीप सभ लोआ। एक कवावे ते सभ होआ।

—राग मारु महला ५ शब्द १७

[७] हरि आज्ञा होए वेद पाप पुन्न वीचारिआ।

—मारु डखणे महला ५ शब्द १

[८] चारे वेद होए सचिआर —आसा दी वार महला १ वार १३

[९] चतुरवेद मुख वचनी उचरे।

— राग गौडी महला ५ शब्द १६४

[१०] चतुरवेद पूरन हरि नाइ।

—रामकली महला ५ शब्द १७

[११] चार पुकारहि न तू माने।

—रामकली महला ५ शब्द १२

[१२] चार वेद जिहवा भने।

—राग सारंग महला ५ शब्द १३१

वेद किसको दिये—

[१३] ब्रह्मा विशन महेस देव उपाइआ। ब्रह्मे दित्ते वेद पूजा लाइआ। —राग मलार वार महला २ वार ३।

[१४] चारे वेद ब्रह्मे कउ दिये पढ़ पढ़ करे वीचारी।

—राग आसा मह० ३ अष्टपदियां ३

[१५] चारे वेद ब्रह्मे नो फुरमाइआ।

—मारु सोलहे महला ३ शब्द ७२

इसी प्रकार ब्रह्मे को उपदेश कहने वाले अनेक शब्द हैं। एक शब्द है जिसमें चार प्रकट होते हैं, वह यह है—

[१६] चारे दीवे चहु हथ दीए एका एकी वारी।

—वसन्त हिंडोल महला १ शब्द १

इसका भाव चार दीवे, चार वेद, चहु हथ दीए अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को दिये, एक वार ही। अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में चार वेद चार ऋषियों को दिए गये हैं। अन्यथा ब्रह्मा को वेद दिये गये ऐसे तो अनेक शब्द हैं।

वेद प्रमाण है—

[१७] वेद वखान कहहि इक कहिऐ। ओह वे अन्त अन्त किन लहिऐ। —वसन्त अष्टपदियां मह० १ अ० ३

[१८] वेदु पुकारे वाचीऐ वाणी ब्रह्म विश्रास। मुनि जन सेवक साधिका नाम रते गुण तास। सच रते सिजिण गए हउ सद वलहारै जासु। —श्री राग अष्टपदियां महला १ अष्ट० ७

[१६] केहा कंचन तटै सार। अग्नि गंढ पाए लोहार।
गोरी सेती तुटै भतार। पुती गंढ पाए संसार।
राजा मंगे दिते गंढ पाइ। भुखिया गंढ पवे जा खाइ।
कालां गंढ नदियां मीह झोल। गंढ परीती मिठे बोल।
वेदां गंढ बोले सच कोइ। मुइयां गढ नेकी सत होइ।
एत गंढ वरते संसार। मूरख गढ पवे मुहि मार।

—माझ वार महला १ वार १२

[२०] दीवा वले अन्धेरा जाइं। वेद पाठ मति पापां खाइ।
उगवै सूर न जापै चन्द। जहां गिश्रान (ज्ञान) प्रगास
अज्ञान मिटन्त।

इस पाठ में वेद पाठ द्वारा मति के पाप नाश होने का वर्णन है। इसके साथ ही अगले पाठ में इसके विरुद्ध है। यथा—

वेद पाठ संसार की कार। पढ पढ पंडित करहि वीचार।
विन बूझे सभ होहि खुआर। नानक गुरमुखि उतरस पार।

—राग सूही वार म० १-१७

इसका भाव यही है। यदि पंडित पढ़ता, विचार करता है और परमात्मा को नहीं जानता, तो वह दुःखी होगा। संसार न तर सकेगा। ऐसा न मानें तो दोनों शब्दों की संगति नहीं बनती।

[२१] वेद पुकारै पुन्न पाप सुरग नरक का वीउ।
जो वीजै सो उगवै खांदा जाणै जीउ।

—राग सारंग वार महला १ वार १६

[२२] असंख ग्रंथ मुखि वेद पाठ। —जपुजी १७

[२३] गुरमुखि परचे वेद वीचारी।

—राग रामकली सिध गोष्ट शब्द २८

[२४] भेखी हथ न लभई तीरथि नहीं दाने।
पुछहु वेद पंडतियां मुठी विन माने।

—राग मारु अष्टपदियां महला १ अष्टपदि ६

[२५] मन हठ किने न पाइयो पुछहु वेदां जाइ।

--श्री राग वार महला ३ वार १०

[२६] स्मृति सासत वेद वखाणै। भरमै भूला तत न जाणै।

--राग माझ अष्टपदियां मह० ३ अष्ट १८

[२७] सासत स्मृति सोधि देखहु कोइ।
विण नावै को मुक्ति न होइ।

—राग माझ अष्टपदियां महला ३ अष्टपदि १

[२८] वेदा महि नाम उत्तम सो सुणहि नाहिं फिरहि जिउ वेतालिया। कहे नानक जिन्हां सच तजिया कूड़े लागे तिनी जनम जूए हारिया।

—राग रामकली महला ३ आनन्द १६

[२९] हरि जीउ अहंकार न भावई वेद कूक सुणावहि।

—राग मारु वार महला ३ वार ६

[३०] जुगि जुगि आपो आपणा धर्म है सोध देखहु वेद पुराण। —राग विलावल महला ३ शब्द ४

(३१) सासत वेद पुराण पुकारहि धरम करहु षट करम दृड़इया। —विलावल महला ४ अष्टपदियां अष्ट० २

(३२) नानक वीचारहि सन्त जन चार वेद कहन्दे।

—राग गौड़ी वार महला ४ वार १२

(३३) वाणी ब्रह्म वेद धरम दृडहु पाप तजाइया वल राम जीउ। —सूही छंत महला ४ शब्द २

(३४) दस अठ चार वेद सभ पूछहु जन नानक नाम छुडाई जीउ। —मारु महला ४ शब्द ८

(३५) स्मृत सासत वेद वखाने। जोग ज्ञानसिध सुख जाने। नाम जपत प्रभ सिउ मन माने।

—राग गौड़ी महला ५ शब्द १११

(३६) वेद पुराण स्मृत भने। सभ ऊच विराजत जन सुने। सगल अवस्थान भै भीतर चीन। राम सेवक भै रहित कीन।

—गौड़ी महला ५ शब्द १४४

(३७) सासत स्मृत वेद बीचारे महा पुरुषन इउ कहिआ। बिन हरि भजन नहीं निस्तारा। सुख न किन हूं लहिआ।

—राग गौड़ी म० ५ श० १६२

(३८) वेद सासत जन पुकारहि सुनै नाही डोरा।

— राग आसा महला ५ शब्द १५२

(३९)) सासत वेद स्मृति सभि सोधे सभ एका बात पुकारी। बिन गुर मुक्ति न कोऊ पावे मनि वेखहु कर बीचारी।

—गुजरी महला ५ शब्द २

(४०) स्मृति वेद पुरान पुकारन पोथीयां। नाम विना सभ कूड़ गालो होछीयां। --राग सूही महला ५ अष्टपदियां अष्ट० ५

(४१) स्मृति सासत्र वेद पुरान। पारब्रह्म का करहि वखियाण।

— गौंड महला ५ शब्द १७

(४२) सन्त सभा मिल करहु वखिआण। स्मृति सासत वेद पुराण। -- रामकली महला ५ शब्द ५४

(४३) घोखे सासत्र वेद सभ आनन कथ तउ कोइ।

--राग गौड़ी महला ५ वावन अखरी २०

(४४) वेद वखिश्रान करत साधु जन भागहीन समझत नहीं खलु। -टोडी महला ५ शब्द २६

(४५) चार पुकारहि न तू मानहि। षट भी एका बात वखाने। —रामकली महला ५ शब्द १२

(४६) कहंत वेदा गुणंत गुणीया सुणंत वाला वह विधि प्रकारा। दृडंत सुविद्या हरि हरि कृपाला। —सलोक सहस्कृति महला ५। १४

(४७) वेद पुराण सासत्र वीचारं। एकंकार नाम उरधारं। कुलह समूह सगल उधारं। बडभागी नानक को तारं। —गाथा महला ५। २०

(४८) कोई माई भूलिओ मन समझावै। वेद पुरान साध संग सुनकर निमिष न हरि गुण गावै। — राग गौड़ी महला ६ शब्द ६

(४६) वेद पुरान पढै को इह गुण सिमरे हरि को नामा। —राग गौड़ी महला ६ शब्द ७

(५०) वेद पुरान जास गुन गावत ताको नाम हिये में धर रे। — गौड़ी महला ६ शब्द ६

(५१) कल में एक नाम कृपानिधि जाहि जपै गति पावै। और धरम ताके सम नाहन इह विधि वेद बतावै। —राग सोरठ महला ६ शब्द ५

(५२) वेद पुरान स्मृति के मत सुन निमष न हिये वसावै। पर धन पर दारा सिउ रचियो वृथा जनम सिरावै। —राग सोरठ महला ६ शब्द ७

(५३) वेद कतेव कहहु मत झूठे झूठा जो न विचारे। —राग प्रभाती कबीर जी शब्द ३

दसम गुरुग्रन्थ साहिब जी में लिखा है:-

भुजङ्ग प्रयात छन्द—जिनै वेद पढयो सुवेदी कहाए। जिने धरम के करम नीके चलाए। पठे कागदं मद्र राजा सुधारं। आपो आप में वैर भावं विसारं। १। नृपं मुकलियं दूत सो कासी आयं। सभै वेदियं भेद भाखे सुनायं। सभे वेद पाठी चले मद्र देसे। प्रणामं कियो आन कै कै नरेसे। २। धुनं वेद की भूप ताते कराई। सभे पास बैठे सभा बीच भाई। पढ़े साम वेदं जुजुर वेद कत्थं। ऋगं वेद पाठयं करे भाव हत्थं। ३।

रसावल छन्द—अथरव वेद पठयं। सुनियो पाप नठियं। रहा रीझ राजा। दीआ सरब साजा। ४। —विचित्र नाटक अध्याय ४

आगे वह शब्द लिखता हूं जिनमें वेद का खण्डन है। ताकि पाठक समझ सकें उनका ठीक ठीक भाव क्या है। मेरी सम्मति इस प्रकार है। जैसे ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास तीन में लिखा है:-

यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति। —ऋग्वेद १। १६४। ३६

उस ब्रह्म को जो नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? जैसे यह पाठ है वैसे ही वह पाठ हैं। अर्थात् वेद का नाम लेकर वेदानुकूल आचारवान् न होने पर उस की तथा साथ ही वेद की निन्दा है।

(१) पढ पढ पोथी स्मृति पाठा। वेद पुरान पढे पड थाटा। बिन रस राते मन वहु नाटा।

--राग गौड़ी अष्टपदियां महला १ अष्टपदि ११

(२) पंडित पढहि वखाणे वेद अन्तर वस्तु न जाने भेद।

-राग आसा महला १ शब्द २१

(३) नाभि कमल तै ब्रह्मा उपजे वेद पढहि मुख कंठ सवार। ताको अन्त न जाई लखणा आवत जावत रहे गवार।

-राज गुजरी महला १ शब्द २

(४) सासत्र वेद वकै खड़ो भाई करम करहु संसारी। पाखंड मैल न चुकई भाई अन्तर मैल विकारी। इन विधि डूबी माकुरी भाई ऊडी सिरके भारी। –सोरठ महला १ अष्टपदियां २

(५) वेद कतेबी भेद न जाना।
—राग मारू सोलहे महला १ शब्द २, ६

(६) वाचहि पुस्तक वेद पुराना। इक वहि सुनहि सुनावहि काना।
अजगर कपट कहु क्यों खुले विन सतगुरु तत न पाइया।
—मारू सोलहे महला १ शब्द २२

(७) ब्रह्मे गर्व किया नहीं जानिया, वेद की विपति पड़ी पछुतानिया
—राग गौड़ी महला १ शब्द ६

(८) केते कहहि बखाण कहि कहि जावणा।
वेद कहहि वखिआण अन्त न पावणा।
पढिऐ नांही भेद बुझिऐ पावणा।
—राग माझ की वार महला १ वार २१

(६) पंडित मैल न चूकई जे वेद पढ़हि जुग चारि।
त्रैगुणमाइआ मूल है विच हउमै नाम विसार।
पंडित भूले दूजै लागै माइआ के वापार।
– राग सोरठ वार महला ३। वार १३

(१०) लोभीअन कउ सेवदे पढ़ वेदां करहि पुकार।
विखिआ अन्दर पचमुए न उरवार न पार।
—श्रीराग महला ३ शब्द ४३

(११) पढ़ पढ़ पंडित वेद वखाणहि माइआ मोह सुआइ।
—श्री राग वार महला ३ वार ६

(१२) वेद पढ़हि हरि रस नहीं आइआ। वाद बखाणहि मोहे माइआ। —माझ अष्टपदिया म० ३ अ० ३१

(१३) ब्रह्मा मूल वेद अभिआसा। तिसते उपजे देव मोहि पिआसा।
त्रैगुण भरमे नाही निज घर वासा। –राग गौड़ी म० ३ श० ४

(१४) ब्रह्मा वेद पढ़े वाद वखाणै। अन्तरि तामस आप न पछाणै।
—राग गउडी महला ३ अष्टपदियां अष्ट० ५ (१)

(१५) वेद पढ़हि हरि नाम न बूझहि।
माइआ कारण पढ़ पढ़ लुझहि।
अन्तर मैल अगिआनी अन्धा क्योंकर दुतर तरीजे हे।
वेद वाद सभ आख वखाणहि। न अन्तर भीजे न शब्द पछाणहि।
—मारू सोलहे महला ३ शब्द ६

(१६) सासत स्मृत वेद चारि मुखागर विचरे। तपे तपीसर जोगीआ तीरथ गवन करे। षट करमां ते दुगुणे पूजा करता नाइ। रंग न लगी पार ब्रह्म तां सरपर नरके जाइ।
—स्री राग अष्टपदिया महला ५ अष्ट० २६

(१७) वेद पढे मुखि मीठी वाणी। जीआं कुहत न संगे प्राणी।
— गौडी महला ५ श० १०७

(१८) चतर वेद मुख वचनी उचरै आगे महल न पाइऐ। बूझे नाहीं एक सुधाखर ओह सगली झाख झखाइऐ।
--राग गौड़ी महला ५ शब्द १६४

(१६) वेद पढे पढ ब्रह्मे हारे इस तिल नहीं कीमत पाई। साधिक सिध फिरे विलज़ाते ते भी मोह माई।२। दस अउतार राजे होइ वरते महादेव अउधूता। तिन भी अन्त न पाइओ तेरा लाइ थके विभूता। —राग सूही महला ५ शब्द ४६

(२०) वेद कतेव सिंम्रिति सभ सासत्र इन पढियां मुक्ति न होई। एक अखर जो गुरमुखि जापे तिसकी निर्मल सोई।
— सूही महला ५ शब्द ५०

(२१) मुख तां पढ़ता टीका सहित। हिरदे नाम नाही पूरन रहिता।
—रामकली मह० ५ श० १७

(२२) वेद पुकारे मुख ते पंडित कामा मन का माता। मोन होइ बैठा इकांती हिरदे कलपन गाठा।

—राग मारु महला ५ शब्द १५

(२३) वेद पुराण सभे मति सुनके करी करम की आसा। काल ग्रसत सभ लोक सिआने उठ पंडित पै चले निरासा। मन रे सरिओ न एके काजा। भजिआ न रघुपति राजा।

—सोरठ कबीर जी शब्द ३

(२४) सनक सनन्दन अन्त न पाइआ। वेद पढे पढ ब्रह्मे जन्म गवाइआ। —राग आसा कबीरजी शब्द १०

(२५) वेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई। टुक दम करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ।

—राग तिलंग कबीरजी शब्द १

(२६) कबीर माइ मूंडउ तिह गुरु की जाते भरम न जाइ। आप डुबे चहु वेद महि चेले दीए वहाइ।

—कबीर जो सलोक १०४

(२७) हमरे राम नाम कहि उबरे वेद भरोसे पांडे डूब मरहि।

—रामकली कबीरजी शब्द ५

(२८) वेद पुराण सिम्रिति सब खोजे कहूं न उबरना। कहु कबीर इउ रामहि जंपउ मेट जनम मरना।

—राग आसा कबीरजी शब्द ५

(२९) क्या पढीऐ क्या सुनिऐ। क्या वेद पुरानां सुनीऐ। पढे सुने क्या होई। जउ सहज न मिलिया सोई।

—राग सोरठक बीर जी शब्द ७

आगे कुछ शब्द दसम ग्रंथ जी के भी लिखता हूं:-

(३०) देव भेव न जानही जिहि मरम वेद कतेव। १८३

(३१) पार न पाइ सके पदमापति वेद कतेव न भेद उचारा।
—२४४

(३२) वेद पुरान कतेव कुरानहि भेव थके कर हाथ न आए।
—२४५

(३३) वेद कतेव न भेद लखिओ सभ हार परे हरि हाथ न आइओ। २५०

(३४) वेद पुरान कतेव कुरान अभेद न पान सभे पचहारे।
२५१। —अकाल उस्तुति

(३५) जिन की लिव हरि चरनन लागी - ते वेदन ते भए तिआगी। —विचित्र नाटक ६।१६

(३६) वेद भेद नहीं लखे ब्रह्म ब्रह्मा नहीं बुझे। ज्ञान प्रवोध। ३२

(३७) वेद पुरान कुरान सभे गुन गा थके पर जाय न चीनो। ६

(३८) वेद कतेव के भेद सभे तज केवल काल कृपानिधि मानियो। २४। —सवैय्यै

इन सब का भाव प्राय: यही है, जो वेद पढ़ता है और आचारवान् नहीं बनता, वह अच्छा नहीं है। वेद उसे कुछ नहीं करता। कुछ का भाव यह भी है, जो परमात्मा परायण हो गए, उन्होंने वेद छोड़ दिया। यह दोनों बातें ठीक ही हैं।

वेद के साथ प्राय: कतेव का नाम भी आता है। कतेव के अर्थ कुरान हैं उस समय ईसाइयों का प्रचार न था। इस कारण बायबल का उल्लेख नहीं है।

सम्प्रदायों के जो धर्म ग्रन्थ हैं उनको पढ़कर यदि आचारवान न बने उस समय भी यही बात कही जाएगी, जो वेद के नाम पर कही गई है इसलिए इन शब्दों में वेद प्रमाणता का निषेध

नहीं है और प्रथम शब्दों में वेद को प्रमाण माना गया है। यह निर्णीत ही है।

आगे पंडित तारासिंह जी जिन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब का शब्द कोष लिखा है उनका लेख जो वेद शब्द पर है, लिखता हूं। भाषा भी उनकी ही होगी।

वेद—सं० धर्म और ब्रह्म रूप अर्थ को विन्दति अनेन लभते हैं पुरुष जिस कर वा धर्म ब्रह्म को वेति अनेन जाणे हैं पुरुष जिस कर तिस वाणी का नाम वेद है वा धर्म ब्रह्म रूप अर्थ विद्वानों को है विचारणीय रूप कर विद्यते यत्र जाणीते हैं जिस वाणी के बीच तिस का नाम वेद है।

सो वाणी चार स्वरूप है, नाम चारों के १ ऋग, २ यजुर, ३ साम, ४ अथर्वण हैं। इन वेद वृक्षों का मूल ईश्वर है। कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों कांड भाव इन के मोटे टाले (टहने) हैं। यह चारों वेद मन्त्र, ब्राह्मण भेद से दो रूप हैं। दोनों में मूल वेद का नाम मंत्र है, व्याख्यान रूप वेद का नाम ब्राह्मण है। सो ब्राह्मण भी चार हैं। जिनमें ऋग्वेद स्वरूप मन्त्र का एतेरेय ब्राह्मण है। यजुर स्वरूप वेद का शतपथ ब्राह्मण है। साम स्वरूप मन्त्र के सामविधानादि अष्ट ब्राह्मण हैं। जिनके नाम पचविंश, षड्विंश, नाम विधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् हैं। संहितोपनिषद् वंश ये हैं। अथर्वण स्वरूप मंत्र का गोपथ ब्राह्मण है। इन ब्राह्मण भागों में ही बहुधा ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषद् हैं। सूत्र हैं।

वेद स्वतः प्रमाण है, ऐसे सांख्य शास्त्र के कर्ता कपल मुनि ने स्वीकार किया है। भाव यह समग्र वेद यथार्थ प्रतिपादन करने के स्वभाव से स्वतः प्रमाण है। इस रीति की ही वेद को प्रमाणता ऋषि जैमिनी जी माने हैं। यांते वेदों की प्रमाणता में और काहूँ

की चाह नहीं। स्मृति आदि की प्रमाणता में वेदों की चाह है इसलिये वेद स्वतः प्रमाण है। उपवेदादि दूसरे ग्रंथ परतः प्रमाण हैं, अर्थात् वेद में कहे अर्थ को कहने में प्रमाण है, वेद के विरुद्ध कहने में प्रमाण नहीं, सभी अप्रमाण हैं। इसलिये उपवेदादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। वेद जीव पुरुष कर रचित न होने से अपौरुषेय हैं। यह व्यासादि मुनीश्वरों का सिद्धांत है, सोई 'हरि आज्ञा होए वेद पाप पुन्न वीचारिआ' कह के गुरु का सिद्धांत है।

वेद रचके ईश्वर ने सबसे पहले किसके हृदय में प्रकाशित कीये। इस विषय में शतपथ में अग्नि, वायु, आदित्य से ऋग्, यजुर, साम वेद प्रकट हुए। जिनमें अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद हुया। यह श्रुति का अर्थ है। इस श्रुति के अनुसार आधुनिक लोग एसा कहते हैं।--परमात्मा ने अग्नि आदि द्वारा ब्रह्मा जी को वेद की प्राप्ति करी। प्राचीन ग्रन्थों के अनुकूल निर्णय करने वाले कहते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है। सो परमात्मा सब सृष्टि से पहले ब्रह्मा जी को रचता भया और रच के जो परमात्मा ब्रह्मा जी के लिये और सब को छोड़ वेदों का उपदेश करता भया। पुनः जैसे इस श्रुति में ब्रह्मा जी के प्रथम होने में 'पूर्व' पद है, तैसे मुण्डकोउपनिषद् में प्रथम लिखा है। ब्रह्मा सर्व देवताओं से प्रथम उत्पन्न हूए, सो विश्व की रचना और पालना के द्वार हैं। अब निश्चय करो, जब ब्रह्मा सर्व देवताओं के आदि में उपजे और विश्व रचना के द्वार हैं, तब अग्नि आदिकों की उत्पत्ति ब्रह्मा जी के पश्चात् स्वयं सिद्ध होवे है। यांते पूर्ण ज्ञानी ब्रह्मा जी से ही अग्नि आदिकों ने पढ़ा, यही मानना सार है। वेद परमात्मा ने ब्रह्मा के हृदय में प्रकाशित किये, यह सिद्धांत है, सोई गुरु जी लिखे हैं।

'चारे वेद ब्रह्मा कउ दीए पड़ पड़ करे विचारी।

आपस्तम्ब और कात्यायन मुनि मंत्र, ब्राह्मण दोनों भाग को वेद माने हैं। उनके अनुसार बहुत लोग वह प्रक्रिया स्वीकार करे हैं। कोई आधुनिक मंत्र भाग मात्र वेद है। इतिहास पुराण रूप होने से ब्राह्मण भाग वेद नहीं, ऐसे कहे हैं। सोई दिखावे हैं।

(१) ब्राह्मण वेद नहीं, वेद संज्ञा से विरुद्ध इतिहास, पुराण नामों वाला होने ते. महाभारत, पद्मपुराण आदिवत् जैसे महाभारत, पद्मपुराण आदि इतिहास, पुराण नामों वाले होने ते वेद नहीं, तैसे ब्राह्मण भाग भी वेद नहीं।

(२) पुनः ब्राह्मण भाग वेद नहीं बने, मंत्र का व्याख्यान रूप होने ते, और व्याख्यानों वत् । जैसे औरों के व्याख्यान व्याख्यान रूप होने ते मूल रूप नहीं बने, तैसे ब्राह्मण भाग रूप व्याख्यान भी वेद नहीं बने।

(३) पुनः ब्राह्मण भाग वेद नहीं। ऋषियों का कहा होने से। मनुस्मृति आदि ग्रन्थों वत्, जैसे मनुस्मृति आदि ग्रंथ ऋषियों के कहे होने से वेद नहीं तैसे ब्राह्मण भाग भी ऋषियों का कहिआ होने से वेद नहीं।

(४) पुनः ब्राह्मण भाग वेद नहीं, कात्यायन, आपस्तम्ब ते विना और मुनीश्वरों ने वेद संज्ञा न मानने से।

(५) पुनः ब्राह्मण भाग वेद होने ही योग्य नहीं, मनुष्यों की बुद्धि का रचिआ होने से। जैसे मनुष्यों की बुद्धि के रचे होने से रघुवंशादि ग्रन्थ वेद नहीं, तैसे ब्राह्मण भाग भी वेद नहीं सिद्ध होवे।

आपस्तम्ब आदि मुनियों के कहे अनुसार ब्राह्मण भाग को वेद मानने वाले कहते हैं। इतिहास पुराण संज्ञा वेद संज्ञा की

विरोधी नहीं। जेकर विरोधी होवे, तब वेद संज्ञा न बने जैसे मनुष्य, पशु आदि संज्ञा विरोधी है। सो एक अर्थ विषय नहीं बने हैं। एसे इतिहास, पुराण संज्ञा का वेद संज्ञा ते विरोध नहीं, यांते जैसे एक घट विखे घट, कलस, द्रव्य पृथिवी आदि नाना संज्ञा वरते हैं, तैसे एक वेद विखे भी इतिहास, पुराण संज्ञा का विरोध न होने से ब्राह्मण भाग में दोनों संज्ञा सम्भव है। यांते ब्राह्मण भाग भी मन्त्रभाग वत् वेद है।

उत्तर -ब्राह्मण भाग की पुराण, इतिहास संज्ञा उसके वेद मानने वाले भी कहे हैं। और पुराण नाम का पुरातन अर्थ राज वंशादि नवीन अर्थों के वर्णन से पुराणों से वेद वत् संभव नहीं किन्तु पुरा नवं भवति इति पुराणं। बनने समय नये होकर जो पीछे पुराने होगए होवें, सो कहिए पुराण, पुराण पद का एसा अर्थ संभवे है, सो वेद विखे संभवे नहीं। क्योंकि वेद कभी नवीन नहीं बना, सदा अनादि अपौर्षेय है। पुराणवत् इतिहास नाम भी नवीन अर्थ को ही कहे है। काहेते इति, इस प्रकार ह=प्रसिद्ध, आस=हुआ। जैसे कठ उपनिषद् में लिखा है, 'तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस', अर्थ यह तिस उदालक ऋषि का ह=प्रसिद्ध नचिकेता नाम पुत्र आस=हुआ एसे वर्तमान काल से कुछ काल पूर्व होने वाले अर्थों को इतिहास पद कहे हैं। वैसे ही जनक, याज्ञवल्क्यक आदिकों की गाथा में नवीन अर्थों का वर्णन है। जिसको काहूं ऋषि ने विदेह देश के राजा जनकादि के होने से पीछे रचा है। इसी प्रकार इतिहासों में जिनकी कथा है। वह सभ कथा कथा वालों से पीछे बनी है। यथा राम रावण आदिकों की। यां ते परम पुरातन अनादि अर्थ को कहने वाले मंत्र भाग की वेद संज्ञा के साथ नवीन अर्थ कहने याली इतिहास पुराण संज्ञा अविरुद्ध मानना सम्यक् नहीं। रहो अधिक विचार।

एवं पाणनी, पातंजली आदि ऋषियों के रचे सूत्र भाष्यादि व्याख्येय व्याख्यान ग्रन्थों में एक व्याकरण संज्ञा वेखके मंत्र ब्राह्मण भागों में एक संज्ञा माने, पुनः मंत्र, ब्राह्मण रूप व्याख्येय, व्याख्यान को एक की बनाई मूल टीकावत् एक ईश्वर कृत माने, तो भी अयोग्य है, काहेते, जेकर ब्राह्मण भाग भी ईश्वर बनाता, तब उपवेद, अंग, उपांग आदिकों के बनाने में ऋषियों को श्रम क्यों देता दिया है, तो ब्राह्मण भाग रूप व्याख्यान भी औरों के बनाये हैं, ईश्वर के नहीं। और गौण इतिहास पुराणों से मुख्य है, यांते आपस्तम्ब आदि महात्मायों ने गौण मात्र से इनको वेद कहिआ है। अर व्यास ऋषि ने अपने सूत्रों में इन ब्राह्मण भागोंवत् उपनिषद रूप उत्तरकांड का विचार किया है। इसलिये ब्राह्मण भाग मंत्र से उत्तर प्रमाण है, और ग्रंथों से पूर्व प्रमाण है इस सारे पाठ का भाव वही है, जो प्रथम आयसमाज का वेद विषयक सिद्धान्त लिखा है। भेद इतना ही है—पंडित तारासिंह जी वेदों का प्रकाश ब्रह्मा के हृदय में मानते हैं और ऋषि दयानन्द अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के हृदय में प्रकाश मानते हैं।

अन्त में दो शब्द और लिखता हूं यथा—

(१) अखरि सभ भूले भ्रमत न जानिआ। एक सुधाखर जाके हिरदै वसिआ तिन वेदहि तत पछानिआ।

—राग सारंग महला ५ शब्द ११

(२) सासत्र वेद की विधि नहीं जाणहि विआपै मनके मान।

—सारंग महला ५ शब्द २

चिंतनीय पाठ

(१) साम कहै सेतंवर सुआमी सचि महि आछे साच रहे। सभको सच समावै। ऋग कहे रहिआ भरपूर। राम नाम देवा महि सूर। जुज महि जोरि छली चन्द्रावलि कान कृष्ण जादम

भइआ । पार जातु गोपी लै आइआ विंद्रावन महि रंग कीआ।
कलि महि वेद अथर्वण हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ। नील
वसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ । चारे वेद
होए सचिआर । पड़हि गुणहि तिनु चार वीचार । भाउ भगत
कर नीच सदाए। तउ नानक मोखंतर पाए ।

—राग आसावार महला १ वार १३

भाई गुरदास जी गुरुवाणी के ज्ञाता माने जाते हैं, उनका
लेख है—

(२) ऋग्वेद महि ब्रह्म कृत पूर्व मुख सुभ करम विचारा ।
खत्री थापे जुजरवेद दखण मुखवहु दान दातारा । वैशो थापिआ
सयाम वेद पछम मुख कर सीस निवारा । ऋग नीलंबर जुजर
पीत स्वेतंबर कर सयाम सुधारा । त्रिहु जुगी त्रै धरम
उचारा । ६ ।

(३) कलिजुग चौथा थापिआ सूद्र विरत जग महि वरताई ।
करम सु ऋग जुजर सयाम के करे जगत रिक वहु सुकचाई ।७।

(४) चहु वेदां के धरम मथ षट शासत्र मथ ऋषि सुनावै ।...
जयों कर कथिआ चार वेद षट सासत्र संग सांख सुनावै ।८।

(५) गोतम तपे विचारकै ऋग् वेद दीकथा सुणाई ।
नियाइ शास्त्र को मथ कर सभ विध करते हथ जणाई ।...
ऋग कह सुण गुरुमुखां आपे आप न दूजी राई ।६।

(६) जैमन रिख बोलिआ जुजर वेद मथ कथा सुणावै ।
करमा उते निवडे देही मध्य करे सो पावै ।
जुजर वेद को मथन कर तते ब्रह्म विचे चुरम मिलावै ।१०।

(७) स्याम वेद कउ सोध कर मथ वेदान्त विआस सुणाया ।
कथनी वदनी वाहिरा आपे आपने ब्रह्म जणाया ।

आप पुजाइ जगत विच भाउ भगत दा मरम न पाया।
त्रिपति न आवै वेद मथि अगनी अन्दर तपत तपाया।११।

(८) द्वापर जुग वतीत भए कलिजुग के सिर छत्र फिराई।
वेद अथरवण थापिआ उत्तम मुख गुरमुख गुन गाई।
कपल रिषीश्वर सांख मथ अथरवण वेद की रिचा सुनाई।१२

(६) वेद अथरवण मथन कर गुरुमुख वासेषक गुण गावै।
जेहा बीजे सो लुणी समे विना फल हथ न आवे।...
जैसा कर तैसा लहै ऋषि कणादिक भाष सुनावै।१३।

(१०) शेष नाग पातंजल मथिआ गुरुमुख शासत्र नाग सुणाई।
वेद अथरवण बोलिआ जोग विना नहि भरम चुकाई।...
तिहुं जुगा की वासना कलिजुग विच पातंजल पाई।
हथो हथी पाइऐ भगत जोग की पूर कमाई।१४।

(११) कलिजुग के उपकार सुण जैसे वेद अथरवण गाई।
भाउ भगत परवाण है जग्ग होम ते पूरब कमाई।
करके नीच सदा वणा तां प्रभ लेखै अन्दर पाई।१६।

—भाई गुरदास की वारां वार १

यह सिद्धान्त चिन्तनीय है, गुरु जी के आधार पर भाई गुरदास जी ने लिखा कुछ विशेष बातें भी लिखीं। किन्तु यह सिद्धान्त किसके आधार पर है, मुझे इसका कुछ पता नहीं। यथा कोई इस पर कुछ प्रकाश डालने का कष्ट करे, तो उत्तम बात हो।

कर्म

"कर्म—जो मन, इन्द्रिय और शरीर से जीव चेष्टा विशेष करता है। वह कर्म कहाता है कर्म शुभ, अशुभ और मिश्रित भेद से तीन प्रकार का है।

क्रियमाण—जो वर्तमान में किया जाता है, सो क्रियमाण कर्म कहाता है।

संचित—जो क्रियमाण कर्म का संस्कार आत्मा में जमा होता है, उसको सञ्चित कर्म कहते हैं।

प्रारब्ध—जो पूर्व किये हुए कर्म के सुख, दुःखरूप फल का भोग किया जाता है, उसको प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

पुरुषार्थ—अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये मन, शरीर, वाणी और धन से, जो अत्यन्त उद्योग करना है, उसको पुरुषार्थ कहते हैं।

पुरुषार्थ के भेद—जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी, प्राप्त का अच्छे प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्य विद्या की उन्नति में तथा सब के हित करने में खर्च करना है, इन चार प्रकार के कर्मों को पुरुषार्थ कहते हैं।

—आर्योद्देश्य रत्नमाला

"जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी नहीं पावेगा। जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।यजु०। अ० ४०। मं० २

परमेश्वर आज्ञा देता है, कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो। देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथ्वी आदि सदा घूमते, और वृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं, वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखलाते हैं, अन्य को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। —सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७

प्रश्न—ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि क्रूरजन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु जन्म, किन्हीं को वृक्षादि, कृमि कीट पतंगादि जन्म दिये हैं। इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

उत्तर—पक्षपात नहीं आता, क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से, जो कर्म के विना जन्म देता, तो पक्षपात आता।

—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८

प्रश्न—जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है, तो जीव का सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि जब

उसको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था, उसी का यह फल है, तभी वह पाप कर्मों से बच सके।

उत्तर—तुम ज्ञान कै प्रकार का मानते हो।

प्रश्न—प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का।

उत्तर–तो जब तुम जन्म से लेकर समय समय में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खतादि, सुख दुःख संसार में देख कर पूर्व जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते ? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो, उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता है और अविद्वान् नहीं जान सकता, उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरे ने नहीं, परन्तु ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझ से कोई कुपथ्य हो गया है, जिससे मुझे यह रोग हुआ है। वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दुःख आदि की घटती बढ़ती देख के पूर्व जन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते ? और जो पूर्व जन्म को न मानोगे, तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है। क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और बिना पूर्व संचित पुण्य के राज, धनाढ्यता और बुद्धि उसको क्यों दी और पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार दुःख सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

प्रश्न—एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय, जैसे माली अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष लगाता, किसी को काटता, उखाड़ता, और किसी की रक्षा करता बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है, उसको वह चाहे जैसे रक्खे; उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करने वाला नहीं, जो उसको दण्ड दे सके वा ईश्वर किसी से डरे।

उत्तर—परमात्मा जिस लिए न्याय चाहता करता है, अन्याय

कभी नहीं करता, इसलिए वह पूजनीय और बड़ा है। जो न्याय विरुद्ध करे, वह ईश्वर ही नहीं, जैसे माली युक्ति से विना मार्ग वा अस्थान में वृक्ष लगाने, न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योग्य को न बढाने से दूषित होता है इसी प्रकार विना कारण के करने से ईश्वर को दोष लगे, परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है, क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है, जो उन्मत्त के समान काम करे, तो जगत् के श्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत् में विना योग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ट काम किये विना दण्ड देने वाला निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता ? इसलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता, इसी से किसी से नहीं डरता।

प्रश्न—परमात्मा ने प्रथम ही से जिस के लिए जितना देना विचारा है, उतना देता, और जितना काम करना है, उतना करता है ?

उत्तर—उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है, अन्यथा नहीं, जो अन्यथा हो, तो वही अपराधी, अन्यायकारी होवे।

—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ६

इस का भाव संक्षेप से यह है, जीव कर्म करता है। ईश्वर प्रत्येक जीव को उसके कर्मों के अनुसार ही फल देता है। विना किये अपनी इच्छा मात्र से ईश्वर किसी जीव को कोई फल नहीं देता है। इसी के अनुसार कर्म क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध रूप में विभक्त हैं।

आगे सिख गुरुओं के शब्द लिखता हूं, जिनका भाव ऐसा ही है:—

(१) आपे बीजि आपे ही खाहि। -जपुजी २०

(२) चंगि अ इआं बुरिआइआं वाचे धरम हदूरि।
करनी आपो आपणी कै नेडै कै दूरि।
—जपुजी सलोक ३६

(३) ददे दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआं।
जो मैं कीआ सो मैं पाइआ दोसु न दीजे अवर जना।
—राग आसा महला १ पटी लिखी शब्द २१

(४) फल तेवे हो पाइऐ जेवे ही कार कमाइऐ।
—आसा की वार महला १ वार १०

(५) जैसा करे सु तैसा पावे आप बीज आपे ही खावै।
—राग धनासरी मह १ शब्द ६

(६) जेहे करम कमाइ तेहा होइसी।
—राग सूही महला १ शब्द ६

(७) करमा उपर निवडै जे लोचै सभ कोइ।
—राग गौडी महला १ शब्द १८

(८) मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।
—राग आसा वार महला १ वार १४

(९) जो धरम कमावै तिस धरमें नाउ होवै पाप कमाणे पापी जाणीऐ। —राग माझ वार महला १। महला २ वार २

(१०) आगे जाति रूप न जाइ। तेहा होवे जेहे करम कमाइ।
—आसा महला ३ शब्द ४७

(११) जो बीजे सोई फल पाए सुपने सुख न पावणिया।
--राग माझ महला ३ अष्टपदियां अष्ट० ८

(१२) विण करमा किछु पाइऐ नाहीं किआ कर कहिआ जाइ।
—राग आसा महला ३ अष्टपदिआं अष्ट० ३७

(१३) रे मन जैसा सेवहि तैसा होवहि जेहे करम कमाइ।
आप बीज आपेही खावणा कहण कछु न जाइ।
—सूही महला ३। अष्टपदियां ३

(१४) करम धरती सरीर कलिजुग विचि जे को बीजे तेहा को खाइ। --राग गौडी वार महला ४। वार १५

(१५) हरि वेखे सुणे नित सभ किछु तिदू किछु गुझा न होइआ। जैसा बीजे सो लुणै जैसा परव किने बोइआ।

—गौडी वार महला ४ वार १६

(१६) कूडि कपट किने न पाइओ जो बीजे खावे सोइ।

—श्री राग महला ४ शब्द ६५

(१७) जैसा बीजै तैसा खावै।

—राग आसा महला ४। शब्द ५४

(१८) करम धरती सरीर जुग अन्तर जो बोवै सो खाहि।

--स्री राग महला ५ पहरे शब्द ४

(१९) जेहा बीजै सो लुणे मथे जो लिखि आसु।

—माझ वारह माह महला ५ शब्द ६

(२०) कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग।

--माझ वारह माह महला ५ शब्द ५

(२१) वहु जोनि भवहि धुरि किरति लिखि आसा। जैसा बीजहि तैसा खासा। —राग गौड़ी गुआरेरी महला ५ शब्द ७१

(२२) किरत करम न मिटै नानक हरि नाम धन नहीं खटिआ।

—जैतसिरी महला ५ शब्द २७

(२३) दोसु न दीजै काहू लोग। जो कमावन सोई भोग। आपन करम आपे ही वंध। आवन जावन माइआ धन्ध।

—रामकली महला ५ शब्द १९

(२४) जेहा बीजे सो लुणै करमां संदड़ा खेत।

—राग माझ वारह माहां महला ५ शब्द ७

(२५) भूलिओ मन माइआ उरझाइओ। जो जा करम किओ लालच लगि तिह तिह आप वंधाइओ।

—राग जैतसरी महला ९ शब्द १

(२६) फरीदा वेख कपाहै जि थिआ जि सिर थीआ तिलाहि। कमादै अर कागदै कुंने कोइ लिआह। मन्दे अमल करेंदिआं एह सजाइ तिनाह। —शेखफरीद सलोक ५६

(२७) फरीदा मौते दा बंना एवें दिसे जिउं दरिआवै ढाह। आगे दोजक तपिआं सुणीऐ हूल पवै कहाह। इकना नो सभ सोभी आई इक फिरदे वे परवाह। अमल जि कीतिआं दुनी विचिसे दरगह ओगाह। ---फरीद सलोक ९८

(२८) जिउ कपि के वर मुसटि चनन की लुवधि न तिआग दइओ। जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिर गरहि परिओ।

—गौड़ी कबीर शब्द ५६

(२९) नाराइण निंदसि काइ भूली गवारी। दुकृत सुकृत थारे करमुरी। ······पूर्वले कृत करम न मिटेरी·······त्रिलोचन।

—राग धनासरी शब्द १

(३०) जीय जन्त जहा जहा लग करम के वस जाइ।

—राग आसा रविदास शब्द १

इसी भाव के और भी अनेक शब्द हैं, किन्तु मैं यही पर्याप्त समझता हूं। जीव को सुख-दुख कर्म के अनुसार प्राप्त होता है। वह कर्म दृष्ट, अदृष्ट दो प्रकार के हैं। क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः॥ योग अर्थात् क्लेश का मूल कर्माशय ही है. वह दृष्ट जन्म वेदनीय अर्थात् जो इसी जन्म वा इसी शरीर से किये जाते हैं और अदृष्ट वेदनीय, जो पिछले जन्मां में किए थे। यह दोनों ही समय-समय पर फल देने वाले होते हैं। कर्म स्वयं अस्थायी हैं, जड़ हैं, वह अपने संस्कार आत्मा में छोड़ जाते हैं। उन संस्कारों के अनुसार परमात्मा जीव को उसके किए हुये कर्मों का फल देता है। यह सिद्धांत है।

———

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत के नाम=जनेऊ, जंञू, व्रतबंध, सौत्रामणि, प्रतिज्ञा तंतु, उपनयन आदि अनेक हैं। इसके बनाने की विधि स्मृतियों में लिखी है। यह तीन लड़ी का होता है। पुनः एक लड़ी भी तीन-तीन लड़ी मिला कर बनाई जाती है। अर्थात् सब मिलकर नव तंतु हो जाते हैं। उपवीत तीन लड़ी के ऊपर गांठ देकर बनाया जाता है। इस विषय में शिक्षा दी जाती है—

मनुष्य पर तीन ऋण होते हैं, १- ऋषि ऋण-जो विद्या पढ़ने से पूरा होता है। २-पितृ ऋण जो विवाह करके संतानोत्पन्न होने से पूरा होता है। ३-देव ऋण-जो धर्म कार्य करने से पूरा होता है- जैसा पूर्व लिखा है। एक धागे में पुनः तीन धागे होते हैं, उनसे यह शिक्षा मिलती है। माता, पिता, आचार्य की धर्मयुक्त आज्ञा मानो, सेवा करो। ऋक्, यजु, साम वेद पढो, कर्म, उपासना, ज्ञान प्राप्त करने वाले हो, मन, वाणी, शरीर से अच्छे कर्म कर्ता हो आदि।

जिस समय बालक पढने योग्य होता है। उस समय यज्ञोपवीत संस्कार करवाके पढने भेजा जाता है। ऋषि दयानन्द जी ने संस्कार विधि में लिखा है:—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।

अर्थात् आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपवीत हो, अथवा गर्भ

से आठवें में हो। ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष में वैश्य का संस्कार हो।

सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखा है—

(क) इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या…।

(ख) द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी अपनी पाठशाला में भेज दें।

इस प्रकार बालक तथा बालिका दोनों का उपनयन संस्कार होता है। यज्ञोपवीत धारण करने वाला माता, पिता, आचार्य की सेवा, वेद पढने और मन, वाणी, शरीर से बुरा काम न करने का व्रत लेता है। यदि वह इसे पूरा करे तब तो संस्कार सफल है। यदि प्रतिज्ञाओं का पालन न करे, तो उसे विशेष लाभ नहीं होता है। यह सामान्य रूप से उपवीत संस्कार का भाव है।

अब विचार करते हैं-सिख गुरु महाराज इस विषय में क्या आज्ञा देते हैं। उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया वा नहीं?

प्रथम गुरुवों के विषय में लिखते हुये श्री गुरुग्रंथ साहिब जी का एक शब्द और रहित नामों के पाठ लिखना आवश्यक है। अतः वह लिखता हूं:—

(१) दइआ कपाह संतोखु सूत जतु गंढो सत वटु एह जनेऊ जीअ का हई त पाण्डे घतु। ना एहतुटे ना मल लगै ना एहु जलै ना जाइ। धंन सुमाणस नानका जो गल चले पाइ। चउकड़ि मुलि अणाइआ वहि चउके पाइआ। सिखा कंन चड़ाइआ गुर बाह्मण थिआ। ओहु मुआ ओहु झड़ पइआ वे तगा गइआ। १। महला १। लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गाल। लख ठगीआ पह नामीआ रात दिनसु जीअ नाल। तग कपाहहु कतीऐ बाहमण वटे आइ। कुहि बकरा रिंन खाइआ सब को

आखे पाइ। होइ पुराणा सुटीऐ भी फिर पाइऐ होर। नानक तग न तुटई जे तग होवे जोर। २। म० १। नाइ मंनीऐ पति ऊपजै सालाही सच सूत। दरगह अन्दर पाइऐ तग न तुटस पूत। ३। म० १। तग न इन्द्री तग न नारी। भल के थुक पवै नित दाड़ी। तग न पैरी तग न हथी। तग न जिहवा तग न अंखी। वेतगा आपे वते। वटि धागे अवरां घते। लै भाड़ करे वीआहु। कढि कागलु दसे राहु। सुणु वेखहु लोका एह विडाण। मन अंधा नाउ सुजाण। ४। —आसा की वार महला १ वार १५

(२) गुरु जी का सिख जंञू टिके दी काण न करे अर्थात् जंञू टिका धारण न करे। —रहित नामा भाई चोपासिंह जी

(३) जनेऊ न पाइ, तिलक धागा काठ दी माला धारे सो तन खाहीआ। —रहित नामा भाई दयासिंह जी

(४) जो सिख गल महि धागा मेलै। चोपड़ वाजी गनका खेलै। जनम सुवान पावेगा कोटि, रहित नामा भाई प्रहलादसिंह जी।

यह चार पाठ हैं, जो यज्ञोपवीत के निषेध में प्रमाणरूप से कहे जाते हैं इनमें ३ तो रहितनामों के हैं। उन पर विचार पीछे करेंगे। प्रथम श्री गुरुग्रंथ साहिबजी के श्री गुरु नानक देव जी के शब्द पर विचार करते हैं–

कहा यह जाता है–यह शब्द श्री गुरु नानक देव जी ने उस समय पढ़ा था, जब उनका उपवीत संस्कार होने लगा था। इस शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर है और लिखने वाले भी प्रतिष्ठित सज्जन हैं। इस लिये इस शब्द पर उनका विचार क्या है? यह जानना आवश्यक है। उसी से निश्चय करने में सहायता मिलेगी।

भाई बाला जी गुरु नानकजी की सेवा में रहे। वह जहां गए, यह उनके साथ गए। गुरु जी के स्वर्ग सिधारने पर गुरु अंगद जी

ने भाई बाला से पूछ कर नानक देवजी की जीवनी लिखी। उसका नाम जन्म साखी भाई वाले वाली है। उसमें यह घटना इस प्रकार लिखी है।

" जां गुरु नानक नौ वरसां दा होइआ, तां जनेऊ पावण दी रीत करन वासते कालू (गुरु जी के पिता का नाम है) ने पुरोहित हरदयाल को बुलाइआ। शुभ महूरत देख कर पुरोहित जी ने सभ सामिग्री मंगवाई। जो जात भाई कालू के थे, सभ को कहा अर ब्राह्मण जो वहां रहते थे, सभ को निउता (निमंत्रण) दिया। सभ भाई बन्द जाति के अर ब्राहमण भी इकत्र होइके गुरु बाबा जी को जनेऊ पावणे लगे। अस्थान को लेपन कर वेद विध चौकपूरन कीआ। वेदी वंश के सभ भाई और ब्राह्मण जो वेद विध के ज्ञाता थे, सर्वत्र इक्ट्ठे होइके बैठे। बाबा नानक जी को इसनान (स्नान) करवाइ के बुलाइआ। तां बाबा जी इसनान करके आ बैठे। एसे सोभा पावते हैं, जैसे सभ तारा मंडल में चंद्रमा सोभा पावता है। पुरोहित ने छत्रियों की रीत वेद विहित सभ करवाई। जो पुरातन रीत थी और कलाचार सभ सिखाने लगा। संध्या, तर्पण, सिखा, सूत, धोती, जनेऊ, माला, तिलक षट करम गुरुजी नूं सिखावने लगा। तो सर्व समरथ गुरु नानकजी मुक्त, भुक्त के देणे वाले पुरोहित नूं कहण लगे। हे! मिसर जी एस जनेऊ के पाए ते क्या अधिकता हुंदी है। इस जनेऊ पाणदा की धरम है, अते कौण पदवी मिलदी है, अर इसदे न पहरने कर केहड़ी ऊनता हुंदी है। तां हरदयाल जी बोले। इस जनेऊ दे पहरने विना अपवित्र हुन्दा है। चौके का अधिकार हुन्दा नहीं, अपवित्र रहिंदा है। जब वेद की विध पूरवक खत्री, ब्राह्मण इस जनेऊ को पहरते हैं, तब सब करम धरम दे अधिकारी हुन्दे हैन तां फेर गुरुजी कहिआ, सुणो पण्डित जी! खत्री, ब्राह्मण होइ कर जनेऊ

गल पाइआ अर बुरे करम करन थीं न टलिआ, खोटे करम करदा ही रहिआ, तां ब्राह्मण, खत्री जनेऊ पाइके बाहरले धरम नूं क्या करेगा। धन दे वासते हिंसा, धरोह (द्रोह) अधरम, अन्त पर्यन्त दुष्टता, झूठ, चुगली कीती, तब ओह खत्री, बाह्मण नहीं चण्डाल हैं, अन्त नू जमराज दी सासना पावेगा; तिस नूं जनेऊ पाए दा क्या फल होइआ। ईहां जे पाप करेगा, नरक भोगेगा। जद एह वारता गुरु जी ने कही, तां जितने लोक बैठे सन, सभ हैरान हो गए। मन में कहने लगे, हे परमेश्वर जी! अजेतां एह बालक रूप है अते कैसीआं वातां करदा है। तां फेर पंडित आखिआ, हे नानक जी! ओह कौनसा जनेऊ है, जिस जनेऊ पाएते इस प्राणी दा धरम रहिंदा है. तां बाबा जी ने इक सलोक कहिआ—

दाइआ कपाह संतोष सूत जत गंढी सत वट।..........

तां फेर पंडित जी ने कहिआ. महिता कालू तेरा पुत्र कोई देवता है, आपे ही जनेऊ पावे। तां महिते कालू कहिआ, बच्चा महा-पुरुष भी जगत दी चाल करते आए हैन। तां बावे कहिआ, जिवें तुहाडी रजाइ। तां पंडित ने कहा, हे नानकजी एस जनेऊ नूं पवित्र करो, तां बावे जी ने जनेऊ पाइआ।

—जन्म साखी पृष्ठ २०-२३

भाई मनिसिंह जी गुरु गोविंदसिंह जी के साथ रहे, उन्होंने भी एक जन्म साखी लिखी है। आगे उसका पाठ लिखता हूं।

तां राइ बुलार कहिआ, नानक तूं वली है। अर सेवकां नूं आखिआ तुसीं कालू नूं बुला लिआवो। जां ओह कालू नूं बुलावण गए, तां कालू ब्रिजनाथ पुरोहित दे घर बावे दे जनेऊ दा महूरत पुछण गइआ होइआ सी, तां ओह ओथों ही बुलाई लिआए। तां राइ बुलार ने कालू नूं पुछिआ, कि तूं ब्रिजनाथ दे क्यों गया सी? तां कालू कहिआ मैं पुत्र दे जनेऊ दे पावण

वासते लगण गिणन गइआ आहा। अते ओसने आखिआ है, कि सवा सौ मण लुचीआं अर खीर ब्राह्मणां वासते तयार करो अर दस बकरे अर पंज सौ मण और पदारथ खत्रीआं वासते तयार करो अर इक मिरग (हरिण) भी शिकार का मारिआ होया होवे। सो होर समग्री तां मैं सभ तिआर कर आइआ हां। पर इक मिरग दी तुचा हथ नहीं लगती। तां राइ बुलार कहिआ, मैं भलके (कल को) शिकार चढ़ूंगा, अर मिरग मार के लिआऊंगा। तां कालू कहिआ, भलके नौचन्दा एतवार है अर थित (तिथि) पंचमी है, ते मैं भलके नानक को जनेऊ पावांगा, तुसा मिरग जरूर लिआवणा। तां बाबे कहिआ, कि पंज सै मण लुची, कचौरी, कडाह (मोहन भोग) साधां संतां वासते होर तयार करना। जो सारे तलवंडी दे चौफेरे साध उतरे होए हन। तां कालू गुरु नानक जी नूं लैकर घर आइआ, अर जग (उत्सव) दी तयारी करन लगा। कालू सभ तयारी करके ब्रिजनाथ दे घर बाबे नूं लैगिआ। अर सभ ब्रह्मपुरी अर सभ संत साध इकठे होए। तां कालू आखिआ, हे पुरोहित! गुरु नानक जी नूं गयत्री मन्त्र भी देहो अते जनेऊ भी पाओ। तां पुरोहित लगा गुरु नानकदेव जी दे कंन विच गायत्री मंत्र फूकण। तां बाबे पंडित जी नूं कहिआ, कि तूं आप मन्त्र सिखिआ होइआ हैं? जो सानूँ सिखावता है। तां ओस आखिआ, मैं पुराण, शास्त्र सभ पढिआ होइआ हां। तां बाबे कहिआ, चहुं वेदा का मत क्या है? तां ओस कहिआ। जे तूं जाणदा है, तां तूँ कहु तां बाबे सलोक कहिआ:—

नानक मेरु शरीर का इकु रथु इकु रथवाहु। जुग जुग फेरि वटाई अहि गिआनी बुझहि ताहि। सतजुग रथ संतोष का धरम अगे रथ वाह। त्रेते रथ जते का जोर अगे रथवाह।

द्वापुर रथु तपे का सत अगे रथ वाह। कलिजुग रथु अग्नि का कूड अगे रथ वाह। —आसा वार महला १ वार १३

सिंमल रुख सराइरा अति दीरघ अति मुच। ओइ जि आवहि आसकर जाहि निरासे कितु। फल फिके फुल वकवके कंम न आवहि पतु। मिठ तनीवी नानका गुण चँगिआइआं ततु। सब को निवै आप कउ पर को निवै न कोइ। धर ताराजू तोलीऐ निवै स गउरा होइ। अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि। सीस निवाए क्या थीए जि रिदे कुसुधे जाइ।

—आसा वार महला १ वार १४

दइआ कपाह संतोषु सूत जत गंढ ीसत वट……।

—आसा वार महला १ वार १५

तां पुरोहित कहिआ, हे कालू एह तेरा पुत्र कोई देवता पैदा होइआ है। पर जिवें हनुमान नं रावण ब्रह्मफास पाइ सी, ते ओस आपे मंन लई सी, सो एह भी जे आपे मन लवेगा, तां जनेऊ पावेगा, तां कालू आखिआ, बच्चा महापुरुष भी जगत दी चाल करदे आए हन, तां बावे कहिआ, जिवें तुहाडी रजाइ। तां बावे नूं जनेऊ पुआइके कालू घर लिआइआ।

—जन्म साखी भाई मनिसिंह जी पृष्ठ ६०-६७।

आगे नानक प्रकाश का पाठ लिखता हूं: -

कालू बहुरो कीन विचारा। जग्योपवीत देन हित धारा। पुरोहित जो तिह को हरदयाला। सो बुलाइ लीनो ततकाला। उर अभिलाषा सफल सुनाई। छत्री रीत करो द्विजराई। सुन कर वच अस द्विज हरदयालू। कह्या जो मौज सभ आन विसालू। सुभ अवसर सो दीन बताई। कर आरंभ जिउ अधिक बड़ाई। द्विजवर ते सुनकर तब कालू। सभ सँभारन आन उतालू। गामै से लेपन छित करके। पूरयो चौक हष उर धर के।

स्री नानक जी पुन बुलवाए। द्विज वाहुज के बीच वसाए।
छत्रिन रीत जुहुती पुरातन। सो कीनी द्विजवर सभ भातन।
कुल आचार सिखावन लागा। पुन पावन जंञू अनुरागा।
पूछत ते द्विज मोहि सुनाओ। किस कारण ते जँञू पावो।
द्विज छत्री के धरम जुधरणी। जग्योपवीत सु पावन करणी।
द्विज वाहुज को जिस विन धरमा। रहित नहीं बूझहु इह मरमा।
वेदन विधि से जव गर पावहि। द्विज वाहुज निज धरमहि आवहि।
सुन पुरोधा के वचन कृपाला। कंवल वदन कहि गिरा रसाला।
द्विज वाहुज के धरम जो आही। गर में पाए सूत रहा ही।
किधों सुकरम करम करेते रहई। दया आदि जो सुभ निरवहई।
पाइ सूत गर करत कुकरमा। धन हित हिंसा द्रोह अधरमा।
अंत पर्यन्त दुष्टता धारे। झूठ पिशुनता चित हित कारे।
सो छत्री द्विज किधों चण्डाला। लहहि जाइ जम दण्ड विसाला।
कौन जनेऊ तिहि फल दीना। पायो नरक इहां अघ कीना।
कौन जंञू ते जाइन नरका। जाको जम नहीं करे कुतरका।
सो निज रसना देहु सुनाई। सुनन चाहि सभ उर हरसाइ।

— श्लोक महला १।

दइआ कपह संतोषु सूत जत गढी सत वट... चले पाई।

आसावार महला १। १५

तो वालक इह जग्योपवीता। वेद पंथ महि गिणिआ पुनीता।
परमपरा पावस धर धरमा। द्विज वाहुज को राखत धरमा।
ब्रह्मादिक ते इह चल आवा। सनक सनदंन सभ पहरावा।

—महला १।

चउकड मुल अणाइया..............वेतगा गइआ।
पुन तिह काल जो काल ग्याती। सो वोले निज वात सुहाती।
द्विज वाहुज सभ तुम घर आवा। पहरो जंञू जगत सुहावा।

जो निज कुल की चलहि न चाले। जात पात ते करें निराले।
नर संपूरन अर परवारू । हरषहि उर करहु गुर धारू ।
नातर सभ को वध्यो हुलासा। मिट ज है मन होहि उदासा।
एक वार गर पाइ जनेऊ। पुन करीए उर इच्छा जेऊ ।
अस सुन कर ग्यातन के वैना। पुन बोले स्री पंकज नैना।

—महला १।

लख चोरीआं लख जारीआं-——-जे तग होवे जोर ।
अस विध स्री नानक सति दानी। उपदेशन की उचरत वानी।
वचन वदत विप्रन वर आई। जग्योपवीत दीओ पहराई ।
तूपन भए तवे सुख सदना। द्विज दंभन को कीन निकदना।
तिह खिन हरषयो उर पर वारु। सभ के मन ते मिटा खंभारु।

—नानक प्रकाश अध्याय १६

यह तीनों पुस्तक, जन्म साखी भाई बाला, जन्म साखी भाई मनिसिंह जी अते नानक प्रकाश, "दइआ कपाह संतोष सूत०" वाला शब्द लिखते हैं। और लिखकर अंत में तीनों लिखते हैं, गुरु जी को जनेऊ पहनाया गया। यदि यह शब्द निषेध परक ही होता, तो यह लिखते, गुरु नानक जी ने उपवीत न पहना।

भाई बाला गुरु नानक जी के साथ रहा, भाई मनिसिंह जी गुरु गोविन्दसिह जी की सेवामें रहे, यह सज्जन आजकल के सिक्खों से अधिक प्रमाण भूत हैं। ऐसा ही भाई संतोषसिंह जी भी प्रमाण हैं।

पंडित तारासिंह जी पटियाला निवासी ने गुरु मत की अनेक पुस्तकें लिखी हैं, एक पुस्तक का नाम है 'गुरमत निर्णय सागर' उसमें उन्होंने इस प्रकरण पर लिखते समय लिखा है—

"आदि ग्रंथ साहिब के वचन जो निन्दा परक प्रतीत होते हैं, तिनका तात्पर्य "दइआ कपाह संतोष सूत जत गंढी सत वट--"

पाठ से कहे जनेऊ की स्तुति में है, तथा ज्ञान-रूप जग्योपवीत की स्तुति में है, इसकी निन्दा में नहीं।

—गुरमत निर्णय सागर पृष्ठ ४५४

इस शब्द का भाव यही है, यदि कोई यज्ञोपवीत धारण करके अपने आप को कृतकृत्य मान लें, तो ठीक नहीं। उपवीत धारण कर्ता में दया, सत्य, संतोष ब्रह्मचर्य, आदि उत्तम गुण भी होने चाहियें, यह जनेऊ इन गुणों के धारण में निमित्त होना चाहिए यही व्रत वंध की सफलता है।

गुरु जी ने स्वयं लिखा है—

पति विणु पूजा सत विणु संजम जत विणु काहे जनेऊ।
नावहु धोवहु तिलक चढावहु सुच विणु सोच न होई।

—राग रामकली महला १ अष्टपदिया अष्टपदि १

नानक सचे नाम विन क्या टिका क्या तग।

— आसा दी वार महला १ वार ८

इनसे सिद्ध है, जत विण काहे जनेऊ, सचे नाम विन क्या तग कि गुरू जी का भाव यज्ञोपवीत के न धारण करने का कभी भी न था। उनका भाव था, उपवीत धारण मात्र से मनुष्य सतुष्ट न हो जाय। इसे पहन कर जती, सती, संतोषी होना चाहिए।

इन लेखों पर एक आक्षेप हो सकता है कि उस समय गुरु नानक जी बालक थे। घर वालों वा अन्य लोगों के प्रभाव से उस समय तो उन्होंने यज्ञोपवीत पहन लिया होगा, किंतु आगे चलकर किसी समय उतार दिया होगा।

यह आक्षेप भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि उनके उपवीत आगे भी मिलता है। यथा विवाह समय में वर्णन है।

महिंदी पद संजुत कोक नदं, मकरंद अनंद उदार वसाई।
गर चीर है पीत पुनीत मनोहर, जग्योपवीत महा छव छाई।

कर कंकन कंचन भूर किमूर, बनी उरमाल विशाल सुहाई।
जन शांत स्वरूप शिंगार धरे, जग में परगटयो निज भाव दिखाई।
—नानक प्रकाश अध्याय २९ छन्द ४४

जिस समय गुरु नानक जी ने गृह त्याग किया उस समय का वर्णन।

'इतने महि लालो तिह आवा, इह विधि कहयो सुनाई।
अचवहु असन चलहु स्री नानक, दुःख कुंजर मृग राई।
भव वंधन पन्नग जे ग्रसे, वैनतेय हो तिन को।
कृतार्थ कर मुभ करुणाकर, आनन पाइ असन को। २३।
सुनकर स्रीमुख वचना भाखे, आनहु इह ठां जाई।
कह लालो तुमरे गल जंञू, वहर असन क्यों पाई।
चौके अंदर चलकर जेवो, उत्तम जन्म तुम्हारा।
जे इह ठां मंगवावहु सुआमी संसे खोइ हमारा। २४।
स्री मुख कहत धरत है जितनी, तितनो चौका जानउ।
सच रते से सुचे होए, मन को भरम मिटानो।
सुन कर लालो विगसयो तवही, आनयो भोजन जाई।
—नानक प्रकाश अध्याय ३८

इस समय उपवीत होने का यही भाव और स्थानों पर भी लिखा है। यथा —

'तां अगे क्या देखे कि इक तपा जेहा, ते गल विच जनेऊ हैस'
—सूर्य वंशीय खालसा पृष्ठ १११।
—जन्म साखी गुरु नानक पृष्ठ ७८

तां लालो रसोई तयार करके सदण आइआ, तां लालो आखिआ, गुरुजी प्रसाद (भोजन) तयार है, तां गुरु नानक आखिआ, भाई लालो एथे ही लिआओ, तां लालो आखिआ, जी

तुसाडे गल विच जंञू हैगा. तां गुरु नानक जी आखिआ, जितनी धरती तितना ही चौका, एथे ही ले आउ। तांते लालो प्रसाद लिआके अगे आण रखिआ। —जन्म साखी गुरुनानक पृष्ठ ७८

यह लेख इस बात के लिए पर्याप्त हैं. कि गुरु नानक जी ने यज्ञोपवीत आजीवन रखा, क्योंकि उतारने का कोई लेख नहीं है।

प्रश्न—जैसे यज्ञोपवीत को अलंकार से लिखा है। क्या इसी भांति और किसी बात को भी अलंकार में लिखा है।

उत्तर—हां लिखा है। कृषि, दुकान, सौदागरी मसि, औषधि आदि, यथा—

सुण बेटा, असाडी खेती वाहर पाकी खड़ी है, अरजो तूं विचि जाइ कर खड़ा होवे, तां खेती क्यों उजड़े। अते सभ कोई सरीक अते देखण वाले आखण, वाह, वाह, भाई कालू का पुत्र भला होइआ है। ते सुण बेटा लोकां दी बात है, खेती खसमां सेती। तां फेर गुरु जी बोले। हे पिता जी, हुण असां नवेकली (अनोखी) खेती वाही है, अते हल बाहिआ है, अते साडी जमीन वत(वत्र) आई है। सो ओह खेती असीं बहुत तकड़ी (अच्छी) तरह कीती है। फेर गुरु जी ने शब्द आखआ

मनु हाली किरसाणी करनी सरम पाणी तन खेतु।
नाम बीज संतोष सुहागा रख गरीबी वेस।
भाउ करम कर जंमसी से घर भागठ देख।१।

बांवा माइआ साथ न होइ। इन माइआ जग मोहिया विरला बूझै कोइ। —राग सोरठ महला १ शब्द २

तां कालू ने आखिआ, बच्चा खेती नहीं करदा, तां तूं हट ही कढ बैठ, असां खत्रीआं दी खेती तां हटी है, तां गुरु जी ने दूसरी पौड़ी आखी

'हाण हट कर आरजा सच नाम कर वथ।
सुरति सोच कर भांड़ साल तिसु विचि तिसनो रख।
वणजारिआं सिउं वणज कर लै लाहामनु हसु। २।

—राग सोरठ

तां फेर कालू ने आखिया, हे नानक जी, जे हट नहीं करदा, अते तेरा मन फिरणेते है, तां सौदागरी घोड़िआं दी कर, तां बावे आखिआ पिता जी असां सौदागरी भी कीती है, तां बावे जी तीसरी पौड़ी आखी —

सुणि सासत सौदागरी सत घोड़े लै चल।
खरच वंन चंगिआइआं मत मन जाणहि कल।
निरंकार दे देस जाहि तां सुख लहहि महलु। ३।

—राग सोरठ महला १ शब्द २

तां कालू जी ने एह सुणकर आखिआ, हे नानक, जे तूं साडे कम कार तो रह चुकों पर घर तां चल तें बैठ, असां तेरा खटणा छडिआ है ···· किसे दी चाकरी ही कर, तां गुरु नानक जी चौथी पौड़ी आखी।

'लाइ चित कर चाकरी मंन नाम कर कंम।
बंन वदिआं कर धावणी ताको आखे धंन।
नानक वेखे नदर करि चड़े चवगण वंन। ४।

— सोरठ महला १ शब्द २

जन्म साखी गुरु नानक देवजा पृष्ठ ९६-९८। —सोरठ म०१

इसी प्रकार जिस समय गुरु नानक जी को पांधे पास पढ़ने भेजा, तब यह शब्द कहा।

"जालि मोहु, घसिमसु कर मति कागद कर सार।
भाउ कलम कर चित लिखारी गुरपुछ लिख वीचार।
लिखु नाम सालाहि लिख लिख अंत न पारावार। १।

बाबा एह लेखा लिखु जाणु । जिथे लेखा मंगीऐ तिथे होइ सचानीसाण। १ ।
—जन्म साखी पृष्ठ २७।
—स्री राग महला १ शब्द ६

जैसे इन शब्दों में लिखे, कृषि, दुकान, सौदागरी आदि को छोड़ना नहीं है। उसी प्रकार वह शब्द भी उपवीत का निषेध नहीं करता है। जैसे इन कर्मों को करते हुए इन शब्दों में लिखे भाव बनाकर जीवन सुधारने वा सफल बनाने का आदेश है। वैसे ही जनेऊ पहनकर तत्कथित गुणों के पालन का यत्न करना ही उस शब्द का भाव है। इसीलिए आगे लिखे शब्दों में यज्ञोपवीत धारण ही लिखा है।

१. खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूत धोती कीनी।
तूं साहिब हउ सांगी तेरा प्रणवै नानक जाति कैसी।
—राग आसा महला १ शब्द ३३

२. बाहरि जनेऊ जिचरु जोति है नालि,
धोती टिका नाम समालि। ऐथै ओथै निबही नालि।
विणु नावे होर करम न भालि।
—राग आसा महला १ शब्द २०

इसके आगे यह विचार करना है। गुरु नानक जी से भिन्न दूसरे गुरुवों के विषय में क्या लेख है।

एक पुस्तक का नाम प्राचीन बीड़ां है। इसके लेखक श्रीमान् गुर बखशसिंघ जी हैं। पुस्तक पर जी० बी० सिंघ लिखा हुआ है। यह माडल टाउन लाहौर में रहते थे। उस पुस्तक का पाठ प्रथम लिखता हूं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में राग रामकली महला ५ के जो छन्त हैं। उनमें अन्तिम छन्त की केवल दो पंक्तियां ही हैं। उन पर लिखते समय उन्होंने लिखा है—

"रामकली छन्त महला ५ विच पंजवें महले दे इक छन्त दीआं दो पहलीआं तुकां (पंक्तियां) दितिआं हुंदीआं हन। बूडे संधु वाली बीड विचवी पहलीआं ही तुकां हन, पर एस १७८६ वाली बोड विच अते इक होर ग्रंथ विच जो सम्बत १७५८ दा लिखिआं है, वह सारा छन्त २४ तुकां दा दिता है, असी हेठां (नीचे) नकल करदे हां—

"रण झुंझनड़ा गाउ सखी हरि एक धिआवहु ।
सति गुर तुम सेव सखी मन चिंदयड़ा फल पावहु ॥
सतिगुर धिआइआ करम पाइआ अनूप वालक जंमिआ ।
सतिगुर साचे भेज दीआ चिर जीवन बहु पुनिआ ॥
महा आनन्द होआ सदा मंगल हरिगुण गावहु ।
जन कहे नानकु सफल जात्रा सति गुरु पुरुष धिआवहु ॥ १ ।

अमृत भोजन इकत्र करे परवार बुलाइआ ।
वंडिअहु अमृत नाम हरे जित सभ त्रिपताइआ ॥
सतिगुर वहके वंड कीती सगल भाउ दिवाइआ ।
करमा अन्दर वंड होइ खाली कोई न जाइआ ॥
सभ सिख संगत भई इकत्र महा आनन्द समाइआ ।
विन वन्त नानक साम हरि की सर्व सुख मैं पाइआ ।२।
रीति सकल कराइआ हरि सिउ लिव लाई ।
भदण उदोत कराइआ गुरु ज्ञान जपाई ॥
गुरु ज्ञान जपिआ सुखहि दाता, चटसाल बालक पाइआ ।
सगल विद्या सम्पूरण पढिआ, गोविंद रिदे मनाइआ ॥
जेवण वार नाम करण विरथा कोई न जाई ।
विनवन्त नानक दास हरि का मेरा प्रभ अन्त सखाई ॥३।

साध सन्त इकत्र करे, बालक करहु मंगेवा ।
थापे सजन जन कुटम भले वंडिअहु अमृत मेवा ॥

अमृत पाइआ गुर ज्ञान दृड़ाइआ सगल दुःख मिटाइआ ।
लगण लखाइआ धुरहु आइआ वीआहु कुड़म दिवाइआ ॥
अचरज जंञ वणहि ठाकर मुनि जन ढुके सभ देव सूरा।
जन कहे न.नक काज होआ बाजे अनहद तूरा ॥४।

इह साफ दिस रहा है, कि हरगोविंद साहिब दे जनम तों लैके विआह तक दा सारा हाल है । हरगोविन्द साहिब दे जनम दी गुरु अर्जुन देव नूं बड़ी खुशी होई । जिस तरां कि कितने ही शब्दां तों दिस रहा है । जनम बधाई, जिआफत, मुण्डन, जनेऊ, पांधे बिठाना, मंगनी, लगन, जँञ अते विआह सभ रीति कराई, बाजे बजाए अते गुरु साहिब सभ गलां करके खुश होए, हां इह लफज़ 'सतिगुर वहके वंडिआ' कुझ अणोखे हन, अते ओनहां दे निरमान स्वभाव दे उलट हन ।

—प्राचीन वीड़ा पृष्ठ १६८-२००

यह शब्द गुरु अर्जुनदेव जी के हैं। उन्होंने अपने सुपुत्र गुरु हरगोविंद जी का उपवीत स्वयं कराया था । इस शब्द में 'उणेत' पद उपवीत का वाचक है । यह शब्द श्री गुरुग्रन्थ साहिब की प्रचलित वीड़ में नहीं है, किंतु माना यही जाता है। यह शब्द गुरु अर्जुन देव जी का ही है। इसोलिए किसी किसी वीड़ में पूरा शब्द है। और प्रचलित वीड़ में आरम्भ की दो पंक्तियां ही हैं।

इससे यह तो सिद्ध है कि गुरु हरगोविंद जी का उपवीत संस्कार हुआ था । गुरु विलास पातशाही छः में निम्न पाठ है:—

गुरु निदेस सुन विप्र तव, शुभ जँञू गर धार कर पूजा गुरु पूत गर, लागो पुरोहित डार ॥ हरगोविंद कहयो हम गरे जँञ हरि असि पाइ । कुल पुरोहित कुल रीति कर पायो गर हरपाई ॥

—गुर विलास पादसाही ६ अध्याय ५

इस पुस्तक के लेखक ने भी गुरु हरगोविंद जी के यज्ञोपवीत का होना साफ लिखा है। इस प्रकार गुरु अर्जुनदेव जी का शब्द और गुरु विलास का लेख यह सिद्ध करने में प्रमाण हैं कि इन गुरुओं का यह संस्कार अवश्य हुआ था।

आगे गुरु तेग बहादुर जी के विषय में लिखते हैं:—

तिलक जंञू राखा प्रभ ताका। कीनो बड़ौ कलू महिं साका।
—विचित्र नाटक अध्याय ५ छन्द १३

यह लेख श्री गुरु गोविंदसिंह जी का है, इसमें गुरु तेग बहादुर जी के विषय में है, कि उनके तिलक जंञू की रक्षा प्रभु ने की।

दिल्ली नगर के लाल किला में श्री गुरु तेग बहादुर जी का चित्र है। उस चित्र के भाल पर गोल विन्दु का तिलक है। और श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने तिलक. जंञू दोनों लिखे हैं, तिलक भी यही सिद्ध करता है, कि उनके गले में उपवीत भी था।

यही बात ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने पंथ प्रकाश में लिखी है यथा—

जा दिन ते गुरु साका करयो। विपता विच नौरंगा रहयो। हिन्दू तुरक न करने पायो, तग तिलक गुरु रख दिखायो।
—पंथ प्रकाश पृष्ठ ५५४

गुरु गोविन्दसिंह जी के विवाह प्रकरण में ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने पंथ प्रकाश में यह पाठ लिखा है:—

पीत पुनीत उपरना धोती जोति रवि नव छवि छाजे। पीत जनेऊ मनो वदन ससि पै विजरीं विजुरी भ्राजै।
—पंथ प्रकाश पृष्ठ ५१०

इसमें ज्ञानी जी ने साफ ही 'पीत जनेऊ' लिखा है।

इस प्रकार गुरु नानक देव जी, गुरु हरगोविन्द जी, गुरु तेग बहादुर जी, गुरु गोविन्दसिंह जी के यज्ञोपवीत धारण का लेख मिलता है। शेष गुरुओं का नहीं। तो भी यह सब क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुये थे। इसलिए सब के ही उपवीत होगा, ऐसा अनुमान करना उचित ही होगा।

यदि राग आसा का 'दइआ कपाह' वाला शब्द जंञू का निषेध करने वाला होता, तो इन गुरुओं का उपवीत धारण का उल्लेख न होता, इसलिए वह शब्द उपवीत निषेधपरक न होकर अलंकार से अन्तर गुण धारण करने का विधायक है। यही मानना ठीक है।

यह तो हुई, श्री गुरु ग्रंथ जी के शब्द की व्यवस्था। किन्तु रहित नामों में तो सीधा निषेध है। यथा—

गुरु जी का सिख जंञू, टिके दी काण न करे अर्थात् जंञू टिका धारण न करे। रहित नामा भाई चोपासिंह जी

जनेऊ न पाइ। तिलक धागा, काठ दी माला धारे सो तन खाहीआ (प्रायश्चित्तीय) रहित नामा भाई दयासिंह जी।

जो सिख गल महि धागा मेले। चौपड़ बाजी गनका खेले। जनम सुआन पावेगा कोटि। रहित नामा प्रहलादसिंह जी। इनकी व्यवस्था कैसे होगी।

एक उत्तर तो यह है। यह सब रहित नामे गुरु गोविन्दसिंह जी के पश्चात् लिखे गये हैं। इस कारण इनमें जो लिखा है, आवश्यक नहीं वह मान्य है, अथवा ठीक सिद्धांत है।

दूसरे इन पर पंडित तारासिंह जी ने विचार किया है। वह इस प्रकार है।

'प्रश्न चौबीसवां। गुरमत में तिलक, माला, जनेऊ, रू, वाह्य संस्कार धारण करने योग्य हैं वा नहीं ?

उत्तर। जैसे अंतर वैराग्य, विवेकादि संस्कार धारने योग्य हैं, तैसे वाह्य संस्कार मालादि भी योग्य हैं. गुरु सभी धारते रहे हैं। अर बाह्य संस्कारों की रखया रक्षा) हेत ही गुरु जी ने सीस दिया है। कहिआ है, विचित्र नाटक में –

'धरम हेत साका जिन कीआ। सीस दिया पर सिरर न दीआ। तिलक जंञू राखा प्रभ ताका। कीनो वड़ो कलू महि साका।

एता विशेष है। जिस जाति में जो संस्कार योग्य है, वह धारे। जिसको योग्य नहीं वह मत धारे। जैसे जनेऊ का धारना तीन वरणों में है, वह धारें। सूद्रों में और वरण संकरों में नहीं वह न धारें। यांही ते प्रथम गुरु जी ने वैरागियों वत् भाई वाले और बावे बूढ़े आदिकों को पहराइआ नहीं। जो ब्राह्मण खत्री सिख पहरते थे, तिनका हटाइआ नहीं। तथा गुरु गोविन्दसिंह जी ने अमृत समय दयासिंघ का हटाइआ नहीं और चारों को पहराइआ नहीं। कहीं अमृत समय पहरावना लिखा होवे, तो रहो उनको पहरावना परन्तु दयासिंघ का नहीं हटाइआ। यांते जिनको अधिकार है, वह निःशंक पहरे। हटावने में गुरु की आज्ञा नहीं। एसे तिलक भी ग्रंथ साहिब की समाप्ति काल में अर कथा काल में करने वत् सरवदा गुरु को चन्दन चड़ा के निसेक करे, गुरुओं ने हटाइआ नहीं। पुनः माला भी लोहे कपूरादिकों के सिमरने (माला) फेरने वत जिस चीज की रुचि होवे उसकी फेरे, गुरु ने हटाई नहीं। —गुरमत निर्णय सागर पृष्ठ ४५१, २

पंडित तारासिंघ जी की सम्मति गुरु सिद्धान्तानुसार यज्ञोपवीत धारण की है।

आगे पंडित जी रहित नामों के विषय में लिखते हैं—

"जेकर रहित नामे प्रेम सुमारग जैसे गुरु जी ने बनाए होते,

तब भाई मनिसिंघ जी जरूर साखी में उनका पता लिखते, लिखिआ कोई नहीं, इससे वह गुरु की रचना नहीं, प्रेमी सिखों की है। छलिए की बात मानने लाइक तो कोई भी नहीं होती, परन्तु सच्ची बात बालक की भी मान लेनी। इस वासते जो असल होवे, सो सची मानो।

कोई प्रेमी लोग कहते हैं। गुरु के नाम से लिखी को जेब (शोभा) देणी उचित है, मेरे को यह उचित नहीं मालूम देती। क्योंकि झूठ को जेब देनी वाजब होती, तब गुरु तेगबहादुर जी बकाले में * बाईस मंजीओं को जेब देते, आप जाहर न होते गुरु हरराय जी मिटी बेईमान की पढने वाले ❀ रामराय जी के छल के पाठ को जेब देते, बुरा समझ के गद्दी से खारज न करते। नौमे गुरु जाहर हुए, सातवें गुरु जी ने खारज कीआ, इससे निश्चय कराइआ। झूठ को जेब भुल

---

* गुरु हरिकृष्ण जो के स्वर्ग सिधारने समय सिखो ने पूछा था, अपके पीछे गुरु कौन हैं ? उन्होंने उत्तर में कहा था। बाबा बकाले।

उस समय गुरु तेगबहादुरजी अपनी नन्हाल ग्राम वकाला में रहते थे। यह बात प्रगट होने पर धीरमल जी आदि जो अन्य गुरु वंश में से थे, वह सब वकाले आ गये। और अपने-अपने स्थान बना कर सिखों से पूजा लेने लगे। उन स्थानों की संख्या बाईस थी। उनको २२ मंजियां कहा है।

अंत में गुरु तेगबहादुर जी प्रगट हुए और उनका प्रतिवाद किया यह भाव दिखाने को यह शब्द लिखे हैं।

❀ गुरु हर राय जी को बादशाह ने दिल्ली बुलाइआ। वह स्वयं न गए और अपने ज्येष्ठ पुत्र रामराय को भेज दिया।

श्री गुरु ग्रन्थ जी में एक पाठ है। 'मिटी मुसलमान की पेड़े पई

कर भी भला लोक ना देवे। इसी से मनिसिंह जी ने वाणी के अर्थों का निर्णय लिखा। जो पीछे और लोक रचेंगे, तब निर्णय करना कठिन होगा। यांते उन्होंने भी जेब देणी हटाई, जो देणी कहें, वह जाल के पिआरे हैं। .... वास्तव में यह निश्चय है, जो मनिसिंह जी को बीड़ समे नहीं मिली, सो गुरुओं ने नहीं रची। —गुरुमत निर्णय सागर पृष्ठ ५६६, ७।

रहित नामों के लिए भाई कानसिंह जी गुरुमत सुधाकर की भूमिका के पृष्ठ २, ३ पर लिखते हैं:--

साडे मत दे पुराणे अते नवें कविआं ने आपणी आपणी बुद्धि और निश्चय अनुसार, इतिहास, रहित नामे अते संस्कार विधि आदिक अनेक पुस्तक रचे हैन, जिन्हां तो सानूं बेअंत लाभ अर हानि हो रही है। जद असीं आपणे मत दे पुस्तकां विच विरोध देखदे हां, तां मन भ्रम दे चक्र विच पै जांदा है, अते सानूं एह निर्णय करना औखा (कठिन) हुन्दा है, कि गुरुमत दा सचा उपदेशक केहड़ा (कौनसा) पुस्तक है।

—गुरमत सुधाकर की भूमिका।

इस प्रकार पंडित तारासिंघ जी और भाई कानसिंघ जी रहित-नाम की प्रमाणता पर संदेह प्रगट करते हैं। इस कारण रहितनामे प्रमाण न होने से उनका जनेऊ धारण न करना लिखना भी ठीक नहीं हैं, और चार गुरुओं के धारण का लेख है वही ठीक है।

कुम्हार' रामराय जी ने इसे बदल कर 'मिटी बेईमान की कहा।' अर्थात् मुसलमान शब्द को बेईमान से बदल दिया। जब गुरु हरराय जी को पता लगा उन्होंने रामराय जी को कहला भेजा, आप ने पाठ बदला है, इसलिए आप मेरे सामने न आयं, और अपने पश्चात् गुरु पदवी भी उसको न देकर अपने छोटे पुत्र हरकृष्ण जी को दी।

उपर्युक्त बात को लक्ष्य करके यह पाठ लिखा गया है।

प्रश्न—सब गुरु क्षत्रिय थे, और क्षत्रियों के उपनयन संस्कार होता है ; इसलिए गुरुवों के यज्ञोपवीत धारण की व्यवस्था कुछ बन जाती है। किन्तु सब सिख तो क्षत्रिय नहीं हैं। इस कारण सिखों को इसके धारण की आवश्यकता नहीं।

पंडित तारासिंह जी ने गुरमत निर्णय सागर में भी ऐसा ही लिखा है. ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जिनके उपनयन संस्कार होता है वह यज्ञोपवीत धारण करलें और शूद्रादि जिनके नहीं होता है वह जनेऊ न पहरें। इससे यही सिद्ध होता है। सिखों के लिए आज्ञा नहीं है ?

उत्तर-यह तो सत्य है, जन्म से सब सिख क्षत्रिय नहीं हैं, किंतु अमृत छकने (दीक्षित होने) पर जो लेख मिलते हैं, वह उनको क्षत्रिय सिद्ध करते हैं। जैसा कि ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने लिखा है:—

अब तुम सोढ वंस द्विज क्षत्रिय। अच्युत गोत्र भए सभ अत्रि। गुरुघर जनम तुमहारे होए। पिछले जाति वर्ण सभ खोए।

-पंथ प्रकाश निवास २६

यह तो सब को ज्ञात ही होगा, गुरु रामदास जी से गुरु गोविन्द सिंह जी तक सात गुरु सोढी क्षत्रिय थे। जिस समय अमृत छकाया जाता अर्थात् सिख धर्म की दीक्षा दी जाती है। उस समय दीक्षित सिख को कहा जाता है-

"अज तों तुसीं 'सतिगुर के जनमे गवन मिटाइआ' है, अते खालसा पंथ विच सामल होए हों। तुहाडा धारमक पिता स्री गुरु गोविन्दसिंह जी अते धारमक माता साहिब कौर जी हन। जनम आपदा केस गढ साहिब दा है। वासी आनन्द पुर साहिब दी है। तुसीं इक पिता दे पुत्र होण करके आपस विच तो होर सारे अमृत धारिआं दे धारमक भ्राता हों। तुसी पिछली कुल, किरत,

करम, धरम, दा तिआग करके अर्थात् पिछली जात, पात, जनम, देस मजब दा खिआल तक छडडे निरोल (शुद्ध) खालसा वण गए हों। —पृष्ठ १६-१७। सिख रहित मरयादा

जिस समय अमृत छकाया जाता है, यह उपदेश उस समय दिया जाता है।

भविष्य में आपके पिता गुरु गोविन्दसिंह जी हैं और माता साहिब देवा जी आपकी माता हैं। इसी बात को पूर्वलिखित पंक्तियों में सामने रख कर सब को सोढी लिखा है यह बात अमृत छकने के समय की है। भाई कानसिंह जी ने सिखों के संबोधन करते समय, गुरमत सुधाकर में यह शब्द लिखे हैं। "श्री गुरु गोविंदसिंघ साहिब अद्वितीय वीर दे सपुत्रो अते माता साहिब कौर दे दुलारे मेरे प्यारे गुरु भाइयो" जब सब सिख गुरु गोविन्दसिंह जी और माता साहिब देवां जी के पुत्र हैं तो इनके क्षत्रिय होने में संदेह करना उचित नहीं है। अतः सिख सब सोढी क्षत्रिय ही समझे जाते हैं।

जैसे अमृत छक कर सब सिख क्षत्रिय हो जाते हैं। वैसे ही मालवे में 'बाले मुनिया सब सिधू' की कथा प्रसिद्ध है। इसका भाव है—मालवे में सिधू जाट हैं, नाभा, पटियाला, जींद के राजे और फीरोजपुर का बाहिया (२२ ग्राम) तथा अनेक ग्राम इनके हैं। इनके अतिरिक्त बाला नाम का एक साधू था, वह भी सिधू था। उसने जिन ग्रामों को अपना अनुयायी बनाया, वह भी सब सिधू कहलाते हैं इसी कारण 'बाले मुनिया (शिष्य बनाया) सब सिधू' कहते हैं।

प्रश्न—यह तो पता लगा, सिख क्षत्रिय हैं. वह स्वयं भी अपने आप को वीर कहते हैं, लड़ाके मानते हैं, क्या गुरु महाराज ने सिखों को भी यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा दी है? क्योंकि जब तक आज्ञा न हो तब तक सिखे उपवीत क्यों धारण करें।

उत्तर—गुरु गोविन्द सिंह जी के समय की घटना है, उसका वर्णन पंडित तारासिंह जी ने गुरुमत निर्णय सागर में भी किया है। उसमें यज्ञोपवीत की बात है।

प्रश्न—वह बात क्या है ?

उत्तर—वासियां वाले सिखां ने गुरु गोविन्द सिंह जी के पास दस प्रश्न लिख कर भेजे थे। गुरु महाराज जी ने उनके उत्तर लिखवाए थे। उत्तर भाई मनिसिंह द्वारा लिखे गए थे। उनका नाम 'वाजवुल अरज' है। उनमें एक प्रश्न यज्ञोपवीत विषयक है। यथा—

प्रश्न—जनेऊ पावने समय आगे सिर मुंडवाने की रीति थी। अब सिख रोकते हैं, क्या हुकम ?

उत्तर—सहजधारी के बेटे की कैंची से रीति करो, केसधारी के बेटे को दही से केसो असनान (स्नान) कराओ, जनेऊ समय। इस लेख में गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने सब सिखां को जनेऊ पहनने का आदेश दिया है। भेद इतना ही है—जहां आर्यों के चौर हैं, वहां सहजधारी अर्थात् जिसने अमृत नहीं छका, उसका मुंडन कैंची से किया जाय। और जिसने अमृत छका है, केसधारी है। वह दही से सकेश स्नान करके उपवीत पहन ले। इस प्रकार सब सिखों को जनेऊ पहनने का विधान गुरु गोविन्द सिंह जी ने किया है। क्योंकि सिख सब क्षत्रिय हैं। इन लेखों से यह सिद्ध है गुरु नानक देव जी, गुरु हरगोविन्द जी, गुरु तेग बहादुर जी, गुरु गोविन्दसिंह जी के यज्ञोपवीत था।

भाई दयासिंह के था। और वाजवुल अरज में सिखों का उपवीत धारण करने की आज्ञा दी गई है।

अब सिखों के नेता इसे मानें वा न मानें। सिख धारण करें वा न करें, यह उनकी रुचि, श्रद्धा और इच्छा की बात है।

———

ब्रह्म यज्ञ (सन्ध्या)

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

सन्ध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। 'आचमन' उतने जल को हथेली में लेके, उसके मूल और मध्यप्रदेश में ओष्ठ लगा के करे, कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अँगुली के अग्र भाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के। उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो, तो न करे। पुनः समंत्रक प्राणायाम, मनसा परिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात अघमर्षण अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे, यह सन्ध्योपासना एकान्त देश में एकाग्र चित्त से करे।

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १०४

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होके, जल के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल-चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

सत्यार्थ प्रकाश समु० ३

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ मनु० अध्याय ४।२१

(ऋषियज्ञ) सन्ध्या, (देवयज्ञ) हवन, (भूतयज्ञ) बलिवैश्व-देव, (नृयज्ञ) अतिथि यज्ञ, (पितृयज्ञ) श्राद्ध अर्थात् जीते माता-पिता की सेवा यथाशक्ति न छोड़े ।

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः । मनु० ३।७०

वेद पढ़ना, ब्रह्म यज्ञ अर्थात् सन्ध्या है ।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत ।
उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् । षड्विंश ब्राह्मण ४।५

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः । म०अ०२।१०३

इसलिये दिन और रात्रि की सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान अवश्य करना चाहिए ।

जो यह सायं और प्रातः काल में न करे उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कामों से बाहर निकाल देवें अर्थात् शूद्रवत् समझें ।

प्रश्न—त्रिकाल सन्ध्या क्यों नही करना ?

उत्तर—तीन समय में संधि नहीं होती, प्रकाश और अन्धकार की सन्धि भी सायं प्रातः दो ही वेला में होती है, जो इसको न मानकर मध्याह्न काल में तीसरी सन्ध्या माने, वह मध्य रात्रि में भी सन्ध्योपासन क्यों न करे ? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहे, तो प्रहर-प्रहर, घड़ी-घड़ी, पल-पल और क्षण-क्षण की भी संधि होती है, उसमें भी सन्ध्योपासन किया करे । जो ऐसा करना भी चाहे, तो हो ही नहीं सकता और किसी शास्त्र का मध्याह्न सन्ध्या में प्रमाण भी नहीं । इसलिये दोनां कालों में सन्ध्या करनास मुचित हैं तीसरे काल में नहीं । — सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४ ।

सन्ध्या शब्द के अर्थ भली प्रकार ध्यान करना, जो सन्धि समय अर्थात् प्रातः और सायं काल में किया जाता है, इसलिये इसका नाम सन्ध्या है। ब्रह्म वेद को कहते हैं। इसके पाठ को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। जो मनुष्य वेद का अधिक पाठ न कर सके उसके लिये कुछ मन्त्र पढ़ने के लिये ऋषियों ने नियत कर दिये हैं, सन्ध्या में वही मन्त्र पढ़े जाते हैं।

सिख पंथ में वेद पाठ और सन्ध्या दोनों का लेख मिलता है। यथा—गुरमुखि परचे वेद वीचारी। गुरमुखि परचे तरीऐ तारी। गुरमुखि परचे सुसबद गिआनी। गुरमुखि परचे अंतर विधि जानी गुरमुखि पाइऐ अलख अपार। नानक गुरमुखि मुकति दुआर।

—राग रामकली महला१ सिध गोसट शब्द २८

इस शब्द में वेद विचार का वर्णन है।

एहा संधिया प्रवाण है जित हरि प्रभ मेरा चित आवै।
हरि सिउ प्रीति ऊपजै माइआ मोहि जलावै॥

गुर प्रसादी दुविधा मरे असथिर (स्थिर) संधिया करे वीचार। नानक संधिआ करे मन मुखी जीउ न टिकै मर जमे होइ खुआर।

—विहागड़े की वार महला ३ वार १३

यह शब्द सन्ध्या करने का विधान करता है, ईश्वर प्रेम का कारण कहता है। यदि इस द्वारा मन शुद्ध न हो तो उसे मन मुख बतलाकर निन्दनीय मानते हैं।

तेरह

हवन (देव यज्ञ)

वैदिक सिद्धांत में ब्रह्मयज्ञ के पश्चात् देवयज्ञ है। इसमें घृत और सुगन्धित सामग्री अग्नि में डाले जाते हैं। यह भी संध्या के साथ साथ अर्थात् प्रातःकाल प्रथम सन्ध्या पश्चात् हवन और सायंकाल प्रथम हवन और पश्चात् सन्ध्या करनी होती है। आहुति देते समय वेद मन्त्रों का पाठ होता है।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है —

"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है। उस के लिये एक किसी धातु वा मट्टी के ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन, उतनी ही गहरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनाले अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो, उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहे। उसमें चन्दन, पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों क टुकड़े उसी वेदी के परिमाण से बड़े छोटे करके उसमें रक्खे, उसके मध्य में अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त ईंधन रखदे, एक प्रोक्षणी पात्र और दूसरा प्रणीता पात्र और एक आज्य स्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र और चमसा, सोने, चाँदी वा काष्ठ का बनवा के प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रखके घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिए है, कि उससे हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे। फिर इन मन्त्रों से होम करे—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । ओं भुववार्यवेऽपानाय स्वाहा ।
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वा-
दित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य स्वाहा ।

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर एक एक आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो, तो—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव । —यजु० अध्याय ३० । ३

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र से आहुति देवे । ओं भूः और प्राणः आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं । इन के अर्थ कह चुके हैं । 'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है, कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो, वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं । जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्य को भी परोपकार करना चाहिये ।

प्रश्न—होम से क्या उपकार होता है ?

उत्तर—सब लोग जानते हैं, कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है ।

प्रश्न—चन्दन आदि घिसके किसी के लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो । अग्नि में डाल कर व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं ।

उत्तर—जो तुम पदार्थ विद्या जानते, तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता । देखो जहां होम होता है, वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी । इतने ही से समझलो, कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है ।

प्रश्न—जब ऐसा ही है, तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुख कारक होगा ?

उत्तर—इस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है, कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है, और अग्नि ही का सामर्थ्य है, कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है।

प्रश्न—तो मन्त्र पढ़के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—मंत्रों में वह व्याख्यान है, कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायं, और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न—क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ?

उत्तर—हां; क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए। और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिए। परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है, इसलिये होम करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे, और एक एक आहुति का कितना परिमाण है ?

उत्तर – प्रत्येक मनुष्य को सोलह सोलह आहुति और छः २ माशे घृतादि एक एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये, और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि-महर्षि राजे-महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो, तो वैसा ही हो जाय।

—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३

इस प्रकार ऋषि दयानन्दजी ने वेदमर्यादानुसार दो काल हवन करने का आदेश दिया है।

आगे श्री गुरुग्रंथ साहिब जी के पाठ लिखकर सिख इतिहास का कुछ पाठ लिखूंगा।

(१) तित विइ होम जग सद पूजा पइऐ कारज सोहे।

—माझ वार महला १। २६

(२) होम जग उरध तप पूजा। कोटि तीरथ इसनान कीजा। चरन कमल निमिषरिदे धारे। गोविंद जपत सभ कारज सारे। —राग प्रभाती महला ५ अष्टपदियां ३

गुरु गोविन्दसिंह जी ने जो हवन किया था, उसके विषय में ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने इस प्रकार लिखा है।

जग होम वेशक करावें।

इह तो धरम हमारा सार। करत रहे नृप मुनि अवतार॥
सो तो हम भी करना चैहैं। जिसते सभ सृष्टि सुख पैहैं॥

इक तो अब दुरभिख अति भारी। है पड रहिओ न वरसत वारी॥
दूसर भारतवर्ष मझारे। महामरी पड़ रही अपारे॥
त्रितीए जो नर नारी आयें। होइ रहे निज धरमों खारज॥
पाप कुकरमन में सभ लागे। इसी हेत बन रहे अभागे॥
जग्य हवन लों सुकृत जे हैं, हाकम तुरक करन ना देहैं॥
हम जब हवन जग्य करवैहैं। खुश होइ घन जल बहु वरसैहैं॥
दुरभिख नासे अन्न बहु पैहै। धरनी रस सभ विधि प्रगटैहै॥
पवन हवन ते शुद्ध भवैहै। रोग सोग सब दूर नसैहै॥
बुद्धि शुद्ध नर नारिन लैहैं। सुकृत सब करने लग जैहैं॥
नसे अविद्या विद्या ऐहैं। सूरवीरता दृढ़ प्रगटैहैं॥
वर्णाश्रमी जन हैं जेते। काइरता कर पूरन तेते॥
भेड बकरिआं सम होइ रहे। वाछित काम तुरक सबल है॥
इने हवन की पवन लगे जब। शेर वघिआइन से ह्वै हैं तब॥
सूरवीरता उर में जग है। धरम पुरातन करने लग है॥
प्रभता देह अरोग कराती। विजय गिआन संतत सुख दाती॥
निरभयता जस, गुण देवी सब। होहि प्रापत गुर घर में तब॥
बालक भाग्यवान प्रगटै हैं। रोग सीतला आदि नसै हैं॥
कामादिक सब असुरी संपति! जग्य होम को पिखके कंपत॥
उत्तम गुण सत आदिक जे हैं। बावन कहे वेद रिग में हैं॥
सो अवश्य जग में वरते हैं। जग्य हवन विधिवत जब ह्वै हैं॥

—पंथ प्रकाश निवास २५ पृष्ठ २०१। २०२।

ज्ञानी जी ने गुरु मुख से हवन के गुण कहलवाए हैं। आगे पंडित जी इसे ठीक कहते हैं यथा—

आप हवन के नफे जो गाए। होई अवश्यमेव सब भाए॥
पर उपकार जगत पर भारी। होइ आपका जग सुखकारी॥

—पंथ प्रकाश निवास २५ पृष्ठ २०२

आगे हवन का वर्णन है। यथा—

आनन्द पुर तट सतलुजे गुर के बाग मझार।
हवन होन लागिओ तहां, पिख स्थान उदार॥
सत्रां सै चुरंजा चेत नवरात्रा के मांही।
लगन महूरत सोध भले सब हवन अरंभयो वांही॥
केशव हवन करावन बैठे गुरु आहुति देते।
बरनी करनी और विप्रन ठानी सांती हेते।
सामग्री युत परनारे सम धारा घृत पवे है।
चार मास तहि हवन भयो जब वर्षा लगी अते है।
फिर नैणा देवी टिले पर असथल पेख सुहावन।
जाइ हवन करने गुर लागे द्विजवर बैठ करावन॥
—पंथ प्रकाश निवास २६ पृष्ठ २०४।

पूर्णाहुति

तब गुर सरब सामग्री हवनकुण्ड के मांही।
एकहि बेर जब पात्रसी चानण भए महाहि॥
—पंथ प्रकाश पृष्ठ २०५

लोक चर्चा हुई।

अब तुरकन के जुलम ते छुट जै है हिन्दवान।
मुसलिआं को गुरु मार है ठान घने घमसान॥
या विधि कर सतगुरु निज कार्य। आनन्द पुर दिन आये आर्य।
—पंथ प्रकाश पृष्ठ २०५

यज्ञ का फल, जो उस समय प्रगट हुआ।

जा दिन ते जग्य होम करयो गुर, पूर रहयो जस भूर उदारे।
घोर जिते जग्य होमन के फल, वेद भने वरते जग सारे।
वारस होन लगी मनवांछित, रोग विसूचिक लौं सब टारे।
लोगन केर स्वभाव स्वते सिध, थे बदले सब काज विधारे।३।

फैल रहे फल फूल युक्तेतरु, औ उगले धरनी रस सारे।
तेज लगो तुरके घटनो. चमके हिन्दवाइन वांग सितारे।
भै मिटियो सतईतन को सभ, और उपद्रव ईस निवारे।
देन लगी बहु दूध गऊ महि, होन लगे अन्न घास पारे।४।

लोग सिआने कहैं मिलयौं इह, होम सु जग्य गुरै वडिआई।
भारत भूमि विखै अति आनंद, होइ गयो सतजुग निआई।
मन्द स्वभाव कुकरम क्लेस, गये उठ यों रविते तम जाई।
होत विचार घरो घर यों गुर कीरति फूली मनो फल वाई।५।

—पंथ प्रकाश निवास २६ पृष्ठ २०८।२०६

रोग कटावन होम महा सकती, विदतावन की सुन के।
संगत देस विदेसन ते, बहु आने लगी गुर पै गुन के।
इसमें धन भूर गुरे खरचिओ, इह सोच चढावहि दुगुन के।

— पंथ प्रकाश पृष्ठ २०६

इस सारे लेख का भाव यही है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने यज्ञ करना श्रेष्ठ पुरुषों का कर्तव्य बताया, और उसके फल रोग निवृति, समय समय पर वर्षा होना, दुर्भिक्ष का मिटना, जनता में सुख होना, लोगों में सद्भावना आदि आना माना।

पुनः उन्होंने कई मास यज्ञ किया, पण्डित केशवजी ब्रह्मा थे अन्य ब्राह्मण अन्य कार्य करते थे। गुरु जी स्वयं यजमान रूप से आहुति देते थे।

यज्ञ समाप्त हुआ, लोगों में नाना प्रकार के वाद चले और देश में उस यज्ञ के अच्छे फल हुए। उससे गुरुजी की ख्याति भी बढ़ी इस प्रकार इस लेख से सिद्ध है, गुरु गोविन्दसिंहजी ने स्वयं हवन किया, वह हवन के विरोधी न थे। पोषक ही थे।

इस समय भी सिख पंथ में एक नामधारी नाम का दल है

उसके प्रवर्त्तक सतगुरु रामसिंह जी भैणी राइयां जिला लुध्याना वाले हैं, इस समय उस गद्दी पर गुरु प्रतापसिंह जी सुशोभित हैं उनमें अब भी हवन का प्रचार है।

उनके उत्तम कार्य करने वाले श्रीमान निधानसिंह जी आलिम हैं। उन्होंने हवन प्रकाश नाम की एक पुस्तक लिखी है। मैं आगे उसका थोड़ासा पाठ लिखता हूं। ताकि पाठकों को उनका पक्ष भी ज्ञात हो जाय।

"स्री सतगुरु रामसिंघ जी ने अपने धरम प्रचार दे प्रोग्राम विच यग्य होम नूं विशेष रूप विच प्रचारिआ है। हर दीवान दी समापति दे समे होम कीता जांदा है। हवन दी मरयादा जो श्री सतगुरु रामसिंघ जी ने उचारन कीती, इउं है। पहलां चौका देणा होम दी जगह, लकड़ी होम विच पलाश दी पौणी जां बेरी दी पौणी, फूंक नहीं मारनी होम दी अग नूं, पक्खे नाल झलणा पंजा आदमीयां ने होम विच पोथीआं तों वाणी पढनी, चौपाई, जपु, जाप, चण्डी दी वार, उग्र दन्ती, चण्डी चरित्र, अकाल उस्तुति। छवां आदमी आहुति पावे, सतवां नाल नाल जलदा छिटा देवे थोड़ा थोड़ा। वधेरे वा कवी हवन करने वाले सत सिंघ इसनान करके सुध देही, सुध वसत्र पहन के तयार वर तयार हो जाण। हवन वाले थां नूं लिपण पोचण वाली मिटी विच गोहा नहीं, रलौणा बेरी जां कपाह दीआं लकड आं निकीआं निकीआं करके हवन कुँड विच जोड देणीआं ते विच इक सावत नलेर (नारियल) रखके वसंत्र जगाणी। उपरंत (पश्चात्) अरदास करके वाणीआं पढनीआं। वाणीआं दी समापती ते फेर अरदास करके जैकारा गजादेणा (घोस करना)

—हवन प्रकाश पृष्ठ १६-१७

इस समय घृतादि सुलभ नहीं है। इस कारण हवन करने में असुविधा है। शतपथ ब्राह्मण में ऐसे समय के लिए ही लिखा है।

× शतपथ ब्राह्मण में राजा,जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद है यदि घृत न होवे, तो हवन कैसे करे, दुग्ध से, दुग्ध न हो तो यव आदि ओषधियों से हवन करे। यदि वह भी न हों, तो अन्य अन्न से, उसके अभाव से जगल की वनस्पितयों से, यज्ञीय वनस्पति न हो तो जल से हवन करले। श्रद्धा से ही करले। सर्वाभाव में श्रद्धा से वेद मंत्रों का पाठ कर लिया जाय।

इस प्रकार देवयज्ञ अर्थात् हवन नित्य कर्म होने से मनुष्य को यथाशक्ति करने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि मनु जी ने लिखा है, 'यथाशक्ति न हापयेत' अर्थात् यथाशक्ति इसे न छोड़े।

× तद्धैतज्जनको वैदेहः। याज्ञवल्क्यम्पप्रच्छ वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य ३ इति, वेद सम्राडिति, किमिति पय एवेति। २। यत्पयो न स्यात्। केन जुहुया इति, व्रीहियवाभ्यामिति, यद्व्रीहि यवौ न स्यातां केन जुहुया इति, या अन्या ओषधय इति, यदन्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति, या आरण्या ओषधय इति, यदारण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति, बानस्पत्येनेति, यद्वानस्पत्यन्न स्यात्केन जुहुया इत्यद्भिरिति, यदापो न स्युः केन जुहुया इति,। ३। स होवाच न वा इह तर्हि किञ्चनासीदथैतद् हूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनुशतं ददामीति होवाच। ४।

—शतपथ कांड ११ अध्याय ३ ब्राह्मण १

चौदह

श्राद्ध (पितृ यज्ञ)

श्राद्ध शब्द का भाव है श्रद्धापूर्वक माता-पितादि की सेवा करनी। कोई एक कहते हैं, जिस समय माता-पितादि का स्वर्गवास हो जावे, उस समय उनके नाम पर ब्राह्मणों को जो भोजनादि देना है वह श्राद्ध है। वह श्राद्ध भी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, पितामही, प्रपितामही पर्यन्त ही होता है। उस के आगे नहीं।

इसमें चिंतनीय यह है कि पितादि संज्ञा, आत्मा की है, वा शरीर की है, अथवा दोनों की है। यदि कहें, आत्मा की है, तो उपनिषद् में लिखा है –

> नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
> यद्यच्छशरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।
>
> —श्वेताश्वतर अध्याय ५ मन्त्र १०

जीव, न स्त्री है न पुरुष है और न ही नपुंसक है, वह जिस शरीर को प्राप्त होता है वही संज्ञा होजाती है।

इसलिए आत्मा का नाम पितादि नहीं हो सकता। यदि शरीर का नाम है, तो शरीर भौतिक है, मृत्यु पश्चात् वह जला दिया जाता है। वह नष्ट होगया, अतः वह भी पितादि संज्ञा वाला नहीं है।

शेष पक्ष रहा उभय का, शरीर तथा आत्मा जीवितावस्था में

ही मिले होते हैं। मरण काल में पृथक् हो जाते हैं, अतः श्राद्ध जीवित माता-पितादि का होना ही युक्तियुक्त है। मृतक का नहीं।

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में इस विषय पर यह लिखा है—

तीसरा पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ाने हारे, पितर जो माता पितादि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी। पितृ यज्ञ के दो भेद हैं। एक श्राद्ध, दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात 'श्रत्' सत्य का नाम है, श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम। जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा, और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उस का नाम श्राद्ध है। और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्" जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् वर्तमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किए जायं, उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिए है, मृतकों के लिए नहीं।.........सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे, उस उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।

—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४

इस लेख के अनुसार आर्यसमाज जीवित पितरों का श्राद्ध मानता है, मृतकों का नहीं।

आगे श्री गुरुग्रन्थ जी के शब्द लिखता हूं जिसमें मृतकों के श्राद्ध का निषेध है।

(१) आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछे पतल सदिहु काव। नानक मनुमुख अंध पिआर। वाझ गुरु डुवा संसार।

—माझ वार महला १ वार १

(२) जीवत पितर न माने कोऊ मूए सिराध कराही। पितर भी वपुरे कहु किउं पावहि कऊआ कूकर खाही। १। मोकउ कुसल वतावहु कोई। कुसल कुसल करते जग विनसे कुसल भी कैसे होई। १। रहाउ। माटी के कर देवी देवा तिसु आगे जीउ देही। ऐसे पितर तुमहारे कहीअहि आप न कहिआ न लेही।

—राग गौड़ी कवीर जी शब्द ४५

इन दोनों शब्दों में मृतक श्राद्ध का निषेध है आगे लिखता हूं, जो कर्म करते हैं, उनको ही मिलता है।

(३) नानक एथे कमावे सो मिले अगे पाए जाइ।

—राग विहागड़ा वार महला १ वार १६

(४) काहे पूत झगरत हंउ संग वाप। जिनके जणे वडीरे तुम हहु तिन सिउ झगरत पाप।

—साराँग महला ४

इस भांति जीवित माता-पिता की सेवा शुश्रूषा करनी ही श्राद्ध है। मृतक प्राणी अपने कर्मानुसार अन्य जन्म प्राप्त कर लेता है। उस के लिए यहां कुछ करना शास्त्रविहित नहीं है।

—❀✱❀—

अतिथि यज्ञ

यदि किसी स्थान पर जहां भोजनादि का प्रबंध है, कोई अतिथि आजाए तो उसको भोजन अवश्य मिलना चाहिए।

सत्यार्थ प्रकाश में अतिथि के विषय में इस प्रकार लिखा है—"अतिथि सेवा—अतिथि उसको कहते हैं, कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो, अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला, पूर्ण विद्वान्, परमयोगी सन्यासी गृहस्थ के यहां आवे, तो उसको प्रथम पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात आसन पर सत्कारपूर्वक बिठलाकर खान-पानादि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा शुश्रूषा करके उसको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उनसे ज्ञान, विज्ञान आदि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे, ऐसे ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल चलन भी उनके उपदेशानुसार रखे समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं।

परन्तु—पाषण्डिनो विकर्मस्थान वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्।
—मनु० ४। ३०

(पाषण्डी) अर्थात् वेद निन्दक, वेद विरुद्ध आचरण करने हारा (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्ता, मिथ्या भाषणादियुक्त, जैसे विडाला छिप और स्थिर रहकर ताकता ताकता झपट

से मूसे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है, वैसे जनों का नाम (वैडाल वृत्तिक) (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जाने नहीं, औरों कहा माने नहीं (हैतुक) कुतर्की, व्यर्थ बकने वाले जैसे कि आजकल के वेदान्ती बकते हैं, हम ब्रह्म और जगत् मिथ्या है, वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित हैं, इत्यादि गपौड़ा हांकने वाले (वकवृत्ति) जैसे वक एक पैर उठा ध्यानावस्थित के समान होकर झट मछली के प्राण हरके, अपना स्वार्थ सिद्ध करता है, वैसे आजकल के वैरागी और खाकी आदि हठी, दुराग्रही वेद विरोधी हैं, ऐसों का सत्कार वाणी मात्र से भी न करना चाहिए। क्योंकि इनका सत्कार करने से वे वृद्धि को पाकर संसार को अधर्म युक्त करते हैं। आप तो अवनति के काम करते ही हैं, परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबो देते हैं।............जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते, तब तक उन्नति भी नहीं होती, उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती, और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है, और मनुष्य मात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। विना अतिथियों के संदेह निवृत्ति नहीं होती, संदेह निवृत्ति के विना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के विना सुख कहां।

—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४

अतिथि—जिसकी आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो, तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तर के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है, उसको अतिथि कहते हैं।

—आर्योद्देश्य रत्नमाला ६३

स्वामी जी ने इस लेख में अतिथि सेवा की जाय, अतिथि कौन है और कौन अतिथि नहीं है, अतिथि से लाभ क्या होते

हैं, आदि बातें लिखी हैं, इसी भाव के श्री गुरु ग्रन्थजी के कुछ शब्द आगे लिखता हूं।

(१) सलोक महला ५।
हरि हरि नामु जो जन जपै सो आइआ परवाणु।
तिसु जन के बल हारणै जिन भजिआ प्रभनिरवाणु।
जनम मरण दुःख कटिआ हरि भेटिआ पुरुष सुजाणु।
सन्त संग सागर तरे जन नानक सचा ताणु।१।

महला ५। भलके उठ पराहुणा मेरे घर आवउ।
पाउ पखाला तिसके मन तन नित भावउ।
नाम सुणै नाम संग्रहै नामे लिव लावउ।
ग्रिहु धन सब पवित्र होइ हरि के गुण गावउ।
हरिनाम वपारी नानका वड भागी पावउ।

—गौडी की वार महला ५ वार १

(३) सलोक महला ३।
दरवेसी को जाणसी विरला को दरवेसु।
जे घर घर हंढै मंगदा धिग जीवन धिग वेसू।
जे आसा अंदेसा तज रहे गुर मुख भिखिआ नाउ।
तिसके चरण परखालीअहि नानक हउ बलिहारे जाउ।

—विहागडा वार महला ४ वार ६।

(३) सलोक महला ३।
अभिआगत एह न आखिअन जिनके चित मही भरम।
तिसदे दिते नानका तेहो जेहा धरमु।
अभै निरंजन परम पद ताका भूखा होइ।
तिसका भोजन नानका विरला पाए कोई।१। —महला ३।
अभि आगत एहि न आखीअन जि पर घर भोजन करेनि।
उदरै कारण आपणे वहले भेख करेनि।

अभिआगत सोई नानका जि आत्म गौण करेनि।
भाल लहनि सहु आपणा निज घर रहण करेनि।

—राग रामकली वार महला ३ वार ६।

(४) कबीर जा घर साध न सेवीअहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि।

—सलोक कबीर १९२

(५) अभिआगत एहि न आखीअनि जिनके मन महि भरम।
तिनके दिते नानका तेहो जेहा धरमु।१।
अभै निरंजन परम पद ताका भीखकु होई।
तिसका भोजन नानका विरला पाए कोई।

—सलोक वारां ते वधीक महला ३

इन शब्दों में भी जो पाखण्डी हैं उनको अतिथि नहीं माना गया। और अतिथि सेवा का विधान भी है। अर्थात् सच्चे अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिये।

सोलह

वर्णाश्रम

चार आश्रम और चार ही वर्ण हैं।

चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास।

चार वर्ण–गृहस्थाश्रम के ही भेद चार वर्ण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

इनमें जन्म से कोई भी नहीं सब गुण कर्म, स्वभाव से होते हैं। ऋषि दयानन्द जी ने लिखा है—

वर्ण—जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।

वर्ण के भेद--जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रादि हैं, वे वर्ण कहाते हैं।

आश्रम—जिनमें अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जायें उनको आश्रम कहते हैं।

आश्रम के भेद--जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण, तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिए गृहस्थ। जो विचार के लिये वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये सन्यासाश्रम होता है। वे चार आश्रम कहाते हैं।

—आर्योद्देश्यरत्नमाला

वर्णाश्रम--गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ।

—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

जन्म से वर्ण न होने और वर्ण परिवर्तन में प्रमाण—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवंतु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।

—मनुस्मृति अ० १०।६५

शूद्र में यदि ब्राह्मण के गुण हों, तो वह ब्राह्मण हो जाय, इसी प्रकार यदि उसमें क्षत्रिय वा वैश्य के गुण हों, तो क्षत्रिय, वैश्य हो जाय। इसी भांति यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से जिसमें जो गुण हो वह वही हो जायगा।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ।

—आपस्तम्ब धर्मसूत्र।२।५।१०,११

धर्माचार से जघन्य वर्ण उच्चवर्ण को प्राप्त हो जाता है। इसी तरह अधर्माचार से उच्च वर्ण जघन्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है।।

वर्णों के गुण कर्म—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्। —मनु० अध्याय १।८८

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ब्राह्मण के कर्म हैं।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।

—गीता अध्याय १८।४२

शम, दम, तप, शौच, शांति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक भाव यह ब्राह्मण के गुण कर्म हैं।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः। —मनु० अध्याय १। ८९

प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ, पढ़ना, विषयों में अप्रसक्ति क्षत्रिय के गुण हैं।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्। --गीता १८।४३

शूरता, तेजस्विता, धैर्य, दक्षता, युद्ध से न भागना, दान देना, ईश्वरभाव अर्थात् पक्षपात रहित होकर न्याय युक्त व्यवहार करना, क्षत्रिय के गुण कर्म हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च। - मनु० १।९०

पशुपालन, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, वृद्धि प्राप्त करना, कृषि करना वैश्य के कर्म हैं।

एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया। —मनु० १।९१

जैसे स्वामी आज्ञा दे, वैसे कर्म करना यही शूद्र का कर्म है

ब्रह्मचारी—वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।१।
अभ्यंगमंजनं चाक्ष्णोरूपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्।२।
द्यूतं च जनवादं च परिवादं च तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च।३।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः।४।
—मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७७—१८०

मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री-संग (कन्या को पर पुरुषसंग) खटाई, हिंसा, अंगों का मलना, अंजन, जूता और छाता धारण करना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, नाचना, गाना, बाजा बजाना,

जूआ खेलना, अन्य व्यक्तियों की बातें करना निन्दा, झूठ, विषय बुद्धि से पुरुष का स्त्री को, स्त्री का पुरुष को देखना, दूसरों की हानि करना, यह सब काम ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी छोड़ दें।

विवाह करके पतिव्रता, पत्नीव्रत रहकर ऋतुगामी होकर अपने वर्ण के कर्मों का करना गृहस्थ आश्रम है।

वानप्रस्थ और सन्यास के कर्म पूर्व लिख दिये हैं उनका पालन करना यह संक्षेप से वर्णाश्रम की वैदिक मर्यादा है।

आगे श्री गुरुग्रन्थ जी तथा सिख लेखकों के लेख लिखता हूं-

" सिख धर्म विच जाति केवल कर्मानुसार है, जनम नाल एसदा सम्बन्ध नहीं। विद्वान गियानी ब्राह्मण, सूरवीर, शस्त्रधारी छत्री, व्यापारी वा कृपाण वैश्य अर टहल मजदूरी नाल उपजीवका करन वाला शूद्र है। जो सेवक विद्वान होके उपदेश करदा है, तां ओही ब्राह्मण है। और शस्त्रधारी कृपाण छत्री पद नाल बुलाया जांदा है।

—गुरमत प्रभाकर कृत भाई कानसिंह जी पृष्ठ ४०४

इसी पुस्तक के पृष्ठ ४०८ पर ब्रह्मचय, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास चार आश्रम लिखे हैं।

पंडित तारासिंघ जी गुरु गिरार्थ कोश में इनको विस्तार से लिखा है मनुष्य पणे से सब सम हैं, और गुण भेद से ब्राह्मणादि चार विभाग ईश्वर ने रचे हैं। शम दमादिक कर्मों के अनुसार रचे हैं। तथाहि-जिसमें सतोगुण मुख्य वह ब्राह्मण, जिसमें रजोगुण मुख्य, सतोगुण गौण वह खत्री। जिसमें रजोगुण मुख्य तमोगुण गौण वह वैश्य, जिसमें तमोगुण मुख्य रजोगुण गौण वह शूद्र, यह चारों में गुणों का विभाग है।

तथा जिसमें शम, दम, तप, शौच, छमा, रिजुता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकपणा वह ब्राह्मण।

जिसमें शूरवीरता, तेज, धैर्य, दख्यता (दक्षता) होवे, युद्ध में

सनमुख जाणा, दान देना, कामों में पुरुषों को प्रेरणा वह खत्री।

जिसमें खेती करना, पसू पालना, खरीदना बेचना, करम वह वैश्य।

जिसमें तीनों वरणों की सेवा वह सूद्र।

यह चारों के करमों के विभाग हैं, इस प्रकार मनुष्यपने से सम भी मनुष्यपन का इन गुण करमों के अनुसार ब्राह्मणादि विभाग है। ब्राह्मण ब्राह्मणी आदिकों से जनमे ब्राह्मणादिक ऐसे माता पिता रूप खेत बीज से नहीं।

—गुरमत निर्णय सागर पृष्ठ ४४१+४४२

(१) ब्राह्मण, खत्री, सूद, वैस चार वरण चार आश्रम हहि जो हरि धिआवे सो प्रधान। —राग गौंड महला ४ शब्द ४

(२) खत्री, ब्राह्मण, सूद कि वैसु, निरति न पाईआ गणी सहंसु। ऐसा दीवा वाले कोइ। नानक सो पारंगत होइ।

—रामकली महला १ शब्द ७

(३) खत्री, ब्राह्मण, सूद, वैस को जापै हरि मंत्र जपैनो।

--राग विलावल महला ४ शब्द ५

(४) खत्री, ब्राह्मण, सूद, वैस सभ एकै नाम तरानथ।

— राग मारु महला ५ शब्द १०

(५) खत्री ब्राह्मण, सूद, वैस उधरै सिमर चंडाल। जिनि जानिओप्रभ आपना नानक तिसहि खाल।

--गौड़ी थिति महला ५ शब्द १७

(६) खत्री, ब्राह्मण, सूद, वैसु उपदेस चहु वरणा कउ साझा। गुरमुख नाम जपै उधरै सो कलि महि घट घट नानक माझा।

--राग सूही महला ५ शब्द ५०

अब तक चार वर्ण तथा आश्रम वाले शब्द कहे, आगे लिखते हैं कि ब्राह्मण किसे कहते हैं—

(७) सो ब्राह्मण जो ब्रह्म वीचारै। आप तरै सगल कुल तारै।

—धनासरी महला १ शब्द ७

(८) सो ब्राह्मण ब्रह्म जो विन्दे हरि सेती रंग राता।

—श्री राग महला ३ अष्टपदिया अष्टपदि २२

(९) मन की पत्री वाचई सुखी हूँ सुख सार।
सो ब्राह्मण भल आखीऐ जे बुझे ब्रह्म वीचार।
हरि सालाहे हरि पढ़ै गुरु के शब्द वीचार।
आइआ ओह परवाण है जि कुल का करे उधार।
अगै जाति न पूछीऐ करणी सबद है सार।

—मारु वार महला ३ वार २२

(१०) ब्रह्म विन्दहि ते ब्राह्मणा जे चलहि सतगुर भाइ।
जिनके हिरदे हरि वसे हउ मैं रोग गवाइ।
गुणरवहि गुण संग्रहि जोति जोत मिलाइ।
इस जुग महि विरले ब्राह्मण ब्रह्म विन्दहि चित लाइ।
नानक जिन कउ नदरि करे हरि सचा से नामि रहे लिव लाइ।

—राग विलावला वार महला ४। सलोक महला २ वार ३

(११) सो ब्राह्मण जो विन्दे ब्रह्म। जप तप संजम कमावै करम।
सील संतोष का रखे धरमु। बन्धन तोड़े होवे मुकति।
सोई ब्राह्मण पूजण जुगत। सलोक वारां ते वधीक। सलोक १६

(१२) सो पण्डित जो मन परवोधै। राम नाम आतम महि सोधै।
राम नाम सार रस पीवै। उस पंडित के उपदेस जग जीवै।
हरि की कथा हिरदे बसावै। सो पंडित फिर जोनि न आवै।
वेद पुरान सिमृति बूझे मूल। सूषम महि जाने अस्थूल।
चहु वरना कउदे, उपदेस। नानक उस पंडित कउ सदा आदेस।
वीज मन्त्र सख को गिआन। चहु वरना महि जपै कोऊ नाम।
जो जो जपै तिसकी गति होइ। साध संग पावै जन कोइ।

—राग गौड़ी सुखमनि महला ५ अष्टपदि ९

(१३) जाति का गरब न करीअहु कोई। ब्रह्म विन्दे सो ब्राह्मण होइ। १। जाति का गरब न कर मूरख गवारा। इस गरब ते चलहि बहुत बिकारा। रहाउ। चारे वरन आखे सभ कोई। ब्रह्म विन्द ते सभ ओपति होई। माटी एक सकल संसारा। बहु विधि भांडे घड़े कुम्हारा। पंच तत मिल देही का अकारा। घटिवधि को करे वीचारा। कहु नानक इह जीउ करम बंध होई। बिन सतगुर भेटे मुकति न होई।

—राग भैरउ महला ३ शब्द १।

(१४) ब्राह्मणह संगि उधरणै। ब्रह्म करम जि पूरणह !

—सलोक सहसकृति म० ५। ६५

(१५) गरभ वास महि कुल नहीं जाती। ब्रह्म विन्द ते सभ उतपाती।१। कहुरे पंडित बामन कबके होए। बामन कहि कहि जनम मत खोए।१। रहाउ। जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाइआ। तऊ आन वार काहे नहीं आइआ। २। तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध।३। कह कबीर जो ब्रह्म वीचारे, सो ब्राह्मण कहि अति है हमारे।४।

—राग गौड़ी कबीरजी शब्द ७

(१७) खत्री सो जो करमां का सूर, पुन्न दान का करे सरीर। खेत पछाणै बीजे दान। सो खत्री दरगह परवाण।

—सलोक वारां ते वधीक महला १ शब्द १७

ब्राह्मण विषयक अनेक शब्द हैं, क्षत्रिय विषयक एक ही शब्द है। वैश्य और शूद्र विषयक मुझे कोई शब्द नहीं मिला अतः लिखा नहीं। हां, चार वर्ण कहने वाले अनेक शब्द लिख दिये हैं और चार आश्रम कहने वाले भी लिखे हैं।

इससे प्रतीत होता है गुरु जी वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से मानते थे। ऐसा ही पण्डित तारासिंह जी भाई कान्हसिंह जी लिखते हैं।

सतरह

तीर्थ

आजकल अनेक तीर्थ माने जाते हैं। कहीं स्नान, कहीं दर्शन, कहीं की यात्रा आदि से पाप नाश और पुण्य उत्पत्ति मानकर लोक ऐसा करते हैं।

सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में ऋषि ने इस विषय पर लिखा है :—

प्रश्न--तो कोई तीर्थ नाम स्मरण सत्य है वा नहीं?

उत्तर--हैं। वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शांति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ ज्ञान, विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म दुःखों से तराने वाले होने से तीर्थ हैं और जो जल स्थलमय हैं, वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते, क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरे, उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं।

--सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११ पृष्ठ २०७

"**तीर्थ**—जिससे दुःख सागर से पार उतरे कि जो सत्य-भाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्या-

दानादि शुभ कर्म हैं, उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ, इतर जल स्थलादि को नहीं।

—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

आगे श्री गुरुग्रंथ जी के शब्द इस प्रकार हैं—

(१) जतु सतु तीरथ मजन नामि। अधिक विचार करउ किस कामि। नर नाराइण अन्तर जामि।

—राग गौड़ी महला एक शब्द ८

(२) गंग वनारसि सिफत तुमारी नावे आत्म राउ।
सचा नावण ता थीऐ जा अहिनिसि लागे भाउ।

—आसा महला १ शब्द ३२

(३) गुर सागरो रतनागरु तित रतन घनेरे राम।
करि मजनो सपतसरे मन निरमल मेरे राम।
निरमल जल नाए जा प्रभ भाए पंच मिले वीचारे।
काम करोध कपट विखिआ तजि सचुनाम उरधारे।
हउमे लोभ लहर लब थाके पाए दीन दइआला।
नानक गुर समानि तीर्थ नहीं साचे गुरु गोपाला।

—राग आसा महला १ छन्त ९।

(४) तीरथ नावण जाउ तीरथ नाम है। तीरथ सबद वीचार अंतर गिआन है। गुरु गिआन साचा थान तीरथ दस पुरब सदा दसाहरा। हउ नाम हरिका सदा जाचउ देहु प्रभु धरणी धरा। संसार रोगी नामु दारू मैल लागे सच बिना। गुरवाक निरमल सदा चानण नित साच तीरथ मजना।

—राग धनासरी महला १ छन्त १

(५) सच वरत संतोप तीरथ गिआन धिआन इसनान।

—राग सारंग वार महला ४। महला १ सलोक वार २१

(६) तीरथ धरम बीचार नावण पुरवाणिआ ।

—मलार वार महला १ वार १

(७) हउ सतगुरु सेवी आपणा इकमन इक चित भाइ ।
सतगुरु मनकामना तीरथ है जिसनो देइ बुझाइ ।
मन चिंदिआं वर पावणा जो इछे सो फल पाइ ।

—स्रीराग महला ३ श० १

(८) सो अगै तीरथ होइ तां मल लहै छपड़ आनाते सगवी मल लाए । तीरथ पूरा सतगुरु जो अनदिन हरि हरि नाम धिआए । —राग माझ वार महला ४ वार ५

(९) प्रभ के चरन मन महि धिआन । सगल तीरथ मजन इसनान —राग गौड़ी महला ५ शब्द १४६

(१०) आठ पहर सिमरहु प्रभ नामु । अनिक तीरथ मजन इसनान । —गौड़ी महला ५ शब्द ९५

(११) कर संगति तू साध की अठसठ तीरथ नाउ ।
जीउ प्राण मन तन हरे साचा एह सुआउ ।
ऐथे मिलहि बडाइआं दरगह पावहि थाउ ।

—स्री राग महला ५ शब्द ८५

(१२) गंगाजलु गुरु गोविंद नाम ।
जो सिमरहि तिसकी गति होवै पीवत वहुँड़ न जोनि भ्रमास ।

—भैरउ महला ५ श० ८

(१३) कवीर गंगा तीर जु घर करहि पीवहि निरमल नीर ।
बिन हरि भगति न मुकति होइ इउ कहि रमे कवीर ।

—सलोक कवीर जी ५४

(१४) इड़ा पिंगुला अउर सुषमना तीन वसहि इक ठाई ।
वेणी संगम तिह परागु मन मजन करे तिथाई ।

--रामकली वेणी शब्द १

(१५) अंतर मैलु जे तीरथ नावै तिसे वैकुंठ न जाना।
लोक पतीणे कछु न होवे नाहीं राम इआना। १।
पूजहु राम एक ही देवा। साचा नावण गुरु की सेवा।१। रहाउ
जल के मजनि जे गत होवै नित नित मेंडुक नावहि।
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिर फिर जोनि आवहि। २
मनहु कठोर मरेहि बानारसि नरक न बांचिआ जाई।
हरि का सन्त मरे हांडंबे त सगली सेन तराई।३।

—आसा कबीर श० ३७

यह सब शब्द दर्शन, स्नानादि का निषेध करते हैं, इससे सिद्ध है गुरु जी इन तीर्थों को इस रूप में न मानते थे। जैसे इस वा उस समय लोग मानते हैं किंतु कुछ शब्द इनसे विपरीत भी मिलते हैं, उनमें से भी कुछ लिखता हूं, ताकि पाठक देखकर ठीक ठीक निश्चय कर सकें।

(१) सत गुरु पुरुष अंम्रितसर वडभागी नावहि आइ।
उन जनम जनम की मैल उतरे निरमल नाम द्रिड़ाइ।

--स्री राग महला ४।६६

(२) हउमै मैल सब उतरी मेरी जिंनड़ीए हरि अंम्रित हरि सर नाते राम। —राग विहागड़ा वार महला ४ वार

(३) हम मैल भरे दुहचारिआ हरि राखहु अंगी अंङु।
गुरु अंम्रित सर नावालिआ सभलाथे किलविष पंङु।

--सूही महला ४ शब्द ३

(४) राम दास सरोवर नाते। सभ लाथे काम कमाते।

—राग सोरठ महला ५ शब्द ६०

(५) राम दास सरोवर नाते। सभ उतरे काम कमाते।

—राग सोरठ महला ५ शब्द ६५

(६) संतहु राम दास सरोवर नीका। जो नावे सो कुल तरावे उधार होइ है जीअका। —राग सोरठ महला ५ शब्द ५७

(७) बसदी सघन अपार अनूप रामदास पुर।
हरिहां कसमल जाहिं नाईए रामदास सर।
—महला ५। पुनहे १०

यह सब शब्द अमृतसर तालाब में स्नान करने से पाप नाश बतलाते हैं। गुरु रामदास जी के शब्दों में अमृतसार शब्द है, गुरु अर्जुन जी ने रामदास सरोवर लिखा है। ध्यान रहे प्रथम गुरु अमरदास जी के समय में इसका नाम 'गुरु का चक' था। जब गुरु रामदास जी आकर रहने लगे तो इसका नाम रामदास-पुर हो गया, जिस समय गुरु अर्जुनदेव जी ने यह तालाब पूर्ण रूप से बना दिया, तब तालाब का नाम भी अमृतसर हुआ, पश्चात् उसी की ख्याति से नगर का नाम भी अमृतसर हो गया। इसलिए इन शब्दों में अमृतसर अथवा रामदास सरोवर, अमृतसर के तालाब का ही वाचक है। किसी अन्य अर्थ का नहीं।

आगे कुछ वह शब्द लिखता हूँ। जो अन्य तीर्थों का वर्णन करते हैं—

(१) मारगि पंथ चले गुर सति गुर संग सिखा।
अनदिन भगत बणी खिन खिन निमष विखा।
हरि हरि भगत बणी प्रभ केरी सभ लोक वेखण आइआ।
जिन दरसु सतिगुर गुरु कीआ तिन आप हरि मेलाइआ।
तीरथ उदम सतिगुरु कीआ सभ लोक उधरण अरथा। मारगि पंथ चले गुरु सतिगुरु संग सिखा॥ २॥

प्रथम आये कुल खेत गुर सतिगुर पुरब होआ। खबर भई संसार आए त्रैलोआ। देखणि आए तीन लोक सुर नर मुनि जन सभ आइआ। जिन परसिआ गुर सति गुरु पूरा तिनके किलविष

नास गवाइआ। जोगी दिगंबर संन्यासी षट दरसन कर गए गोसटि ढोआ। प्रथम आए कुल खेत गुरु सतिगुर पुरब होआ ॥ ३ ॥

दुतीआ जमुन गए गुर हरिहरि जपन कीआ। जागाती मिले दे भेट गुर पिछे लंघाइ दिआ। सभ छुटी सतिगुरु पिछै जिन हरि हरि नाम धिआइआ। गुरु वचन मारग जो पंथ चाहते तिन जम जागाती नेड़िन आइआ। सभ गुरु गुरु जगत बोले गुर के नाइ लइऐ सभ छुटक गइआ। दुतीआ जमुन गए गुर हरि हरि जपुन कीआ ॥ ४ ॥

त्रितीया आए सुरसरी तह कउ तक चलत भइआ। सभ मोही देखि दरसनु गुर संत किने आढु न दाम लइआ। आढु दाम किछु पइअन बोलक जागातीआ मोहण मुंद पई। भाई हम करहि क्या किस पास मांगहि सभ भाग सतिगुर पिछै पई। जागातीआ उपाव सिआणप कर वीचार डिठा भंन बोलकां सभ उठ गइआ। त्रितीआ आए सुरसरि तहि कऊ तक चलत भइआ ॥ ५ ॥

—तुखारी छन्त महला ४ छन्द १०

अजै गंग जलु अटल सिख संगति सभ नावै।

सवैये महला ५। २०।

इन में प्रथम शब्द में गुरु अमरदास जी की तीर्थ यात्रा का वर्णन है, कुरुक्षेत्र, यमुना, गंगा तीन स्थानों का उल्लेख है। दूसरे में गंगा का वर्णन है। यह शब्द तीर्थ का वर्णन वैसे ही करते हैं, जैसे पौराणिक सम्प्रदाय वाले कहते हैं।

इनके अतिरिक्त पं० तारासिंह जी ने एक पुस्तक 'श्री गुरु तीर्थ संग्रह' नाम की लिखी है। उसमें दसों गुरुवों के नाम पर जो गुरुद्वारे हैं उनका वर्णन है, उन गुरुद्वारों में रखी हुई कछ वस्तुओं का भी उल्लेख है। उन्होंने कहीं-कहीं ऐसे पाठ भी लिखे

हैं जैसे अन्य स्थानों वाले प्रचार करके भ्रमोत्पन्न करते रहते हैं। यथा "जहाँ गुरु का जन्म है वहां का फल पुत्र पैदा होणा, जहां गुरु जी का विवाह हुया वहां का फल विवाह, वाउली साहब में स्नान करने से चौरासी लाख योनियों का चक्र काटा जाता है, आदि।" यह बातें गुरु जी के पिछले सिद्धान्त के विरुद्ध प्रतीत होती हैं।

उन्होंने जो पुस्तक का नाम 'तीर्थसंग्रह' रखा, यह भी भ्रमोत्पादक है। यदि वह कोई अन्य नाम रखते, तो, उत्तम होता। क्योंकि तीर्थ शब्द पर जो लोगों की भावना है, वह अज्ञान जन्य है। यह या तो अपना पारिभाषिक अर्थ लिखते वा नाम और रखते। जैसा कि ऋषि दयानन्द जी ने तीर्थ शब्द का यौगिक अर्थ लिखा है।
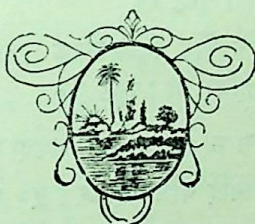
अठारह

मद्य-मांस

वैदिक सिद्धान्त में मद्य-मांस को विवर्जित माना जाता है। ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में अनेक स्थानों पर कहीं एक का कहीं दोनों का नाम लेकर निषेध किया है। आगे सत्यार्थ-प्रकाश के पाठ लिखता हूँ। पृष्ठ आवृत्ति २७ के हैं—

(१) माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य को छोड़ के। पृ० १४

(२) मद्य, मांसादि के सेवन से अलग रहें। पृ० १६

(३) ब्रह्मचारी, और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस...आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें। पृष्ठ २६

(४) जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करने हारे हैं, वे हविर्भुज। पृष्ठ ६१

(५) जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। पृ० ७४

(६) मद्य मांसादि वर्जित होकर। पृ० ८०

(७) जो लोग मांस भक्षण और मद्य पान करते हैं, उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिए उनके संग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें, यह तो ठीक है। परन्तु जब इन से व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है, किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें, तो कुछ भी हानि नहीं। पृष्ठ १६५

(८) वर्जयेत्मधु मांसं च। मनु० २। १७७
अनेक प्रकार के मद्य, गांझा, भांग, अफीम आदि छोड़ दे।
पृष्ठ १६७

(९) जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ, उन्हीं ने मद्यपान, गोमांसादि का खाना-पीना स्वीकार किया, उसी समय से भोजन आदि में बखेड़ा हो गया। पृष्ठ १६९

(१०) जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, इससे देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य, मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। पृष्ठ १७३

(११) मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है, यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता, और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का तो सर्वथा निषेध है क्योंकि अब तक वाममार्गियों के बिना किसी अन्य ने नहीं लिखा, किन्तु सर्वत्र निषेध है। पृ० १७९

(१२) यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं, ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। पृ० १७९

(१३) दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं, वे उस धन को, वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई, बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिसमें दाता के सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। पृष्ठ १९९
(१४) जो मांस खाना है। यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है।। इसलिए उनको राक्षस कहना उचित है, परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा। पृ० २५९

(१५) मद्य पान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कर्मों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया।

पृष्ठ २५६

(१६) जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे। वह विना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

पृष्ठ ३०६

(१७) देखिये। पिता पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म करने न बच सके, ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं, उनकी बुराई का क्या वारापार है? इसलिये सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये। पृष्ठ २०६

(१८) मांसाहारिणः कुतो दया।

मांसाहारी के दया कहां, जब ईसाइयों का ईश्वर मांसाहारी है, तो उसको दया करने से क्या काम? पृष्ठ ३११

(१६) इसी से वह अहिंसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जा सकता। किन्तु मांसाहारी प्रपंची मनुष्य के सदृश है।

पृष्ठ ३१३

(२०) जो वह क्षमा और दया करने वाला है, तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर, मरवाके मांस खाने की आज्ञा क्यों दी।

—पृष्ठ ३३७

मद्य मांस के विरुद्ध यह बीस पाठ सत्यार्थप्रकाश से लिखे हैं। जिसने अधिक देखने हों, वह स्वयं सत्यार्थप्रकाश का पाठ करके देखने का कष्ट करे।

आगे श्री गुरुग्रंथ जी के शब्द लिखता हूं। इनमें प्रथम मद्य विषयक लिखकर फिर मांस विषयक लिखूंगा:—

(१) सचु सुरा गुड़ बाहरा जिस विच साचा नाउ।
सुणहि बखाणै जेतड़े हउ तिन बलिहारे जाउ।
ता मन खीवा जाणीऐ जा महली पावे थाउ। २।
—स्री राग महला १ शब्द ५

(२) माणसु भरिआ आणिआ माणसु भरिआ आइ।
जितु पीतै मति दूर होइ बरल पवै विच आइ।
आपणा पराइआ न पछाणई खसमहु धके खाइ।
झूठा मदु भूल न पीचई जे का पार बसाइ।
नानक नदरी सचु मदु पाइऐ सतगुरु मिलै जिस आइ।
सदा साहिब के रंग रहै महली पावै थाइ।
—बिहागड़ा वार महला ४। सलोक महला ३ वार १६।

(३) सच सचा जिनी न सेविआ से मनमुख मूड़ बेताले।
ओह आलु पतालु मुहहु बोलदे जिउ पीते मद मतवाले।
—राग गौड़ी वार महला ४ वार १६

(४) दुरमति मदु जो पीवते बिखलीपति कमली।
राम रसाइणि जो रते नानन सच अमली।
—राग आसा महला ५ श० ११४

(५) कबीर भांग माछली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि।
तीरथ बरत नेम कीए सभै रसातल जांहि।
—कबीर सलोक २३३

भाई कान्हसिंह जी ने गुरमति प्रभाकर के पृष्ठ ४६७ पर लिखा है—

"गुरमत विच बुधि विनाशक नशे, जिन्हां करके पराधीनता, आलस, रोग और अनेक प्रकार दे विकार उपजदेहन, निषेध कीते गए हन"

(१) जे रतु लगे कपड़े जामा होइ पलीत।
जे रतु पीवहि माणसा तिन क्यों निरमल चीत।
नानक नाउ खुदाइ का दिल हछे मुख लेहु।
अवरदिवाजे दुनो के झूठे अमल करेहु।

—माझ की वार महला १ वार ६

(२) तउ नानक सरब जीआ मिहरंमत होइत मुसलमान कहावै।

—राग माझ वार महला १ वार ८

(३) मारण पाहि हराम महि होइ हलालन जाः।

—माझ वार महला १ वार ७

(४) सच ता पर जाणीऐ जा सिख सचि लेइ।
दइआ जाणै जीअ को किछु पुन्न दान करेइ।

—आसा वार महला १ वार १०

(५) माणस खाणेह करहि निवांज। छुरी वगाइन तिन गल ताग।
तिन घर ब्राह्मण पूरहि नाद। उन्हां भी आवहि ओई साद।
कूड़ी रासि कूड़ा वापार। कूड़ बोल करहि आहार।
सरम धरम का डेरा दूर। नानक कूड़ रहिआ भरपूर।
मथे टिका तेड़ धोती कखाई। हथ छुरी जगत कासाई।
नील वसत्र पहरि होवहि परवाण। म्लेछ धान लै पूजहि पुराण
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा। चउके उपरि किसे न
जाणा। देके चउका कढी कार। उपरि आइ बैठे कूड़िआर।
मत भिटै वे मतभिटै। एह अन्न असाड़ा फिटै।
तनि फिटै फेड़ करेनि। मन जूठे चुले भरेनि।
कहु नानक सच धिआइए। सुचि होवे ता सच पाइऐ।

—राग आसा वार महला १ वार १६

(६) एकादसी इक रिदै वसावै। हिंसा ममता मोहू चुकावै।

फल पावै व्रत आतम चीने। पाखंड राच ततु नह चीने।

—राग बिलावल तिथि महला १ शब्द १३

(७) कादी कूड़ बोल मलु खइ। ब्राह्मण नावै जीआ घाइ।
जोगी जुगतिन जाणै अन्ध। तीनों उजाड़े का वन्ध।

—राग धनासरी महला १ शब्द ७

(८) वगा वगे कपड़े तीरथ मझ वसन।
घुटि घुटि जींआ खावणे वगे न कहीअन।

—राग सूही महला १ शब्द ३

(९) कुदमु करे पसु पंखीआं दिसे नाहि काल।

—स्रीराग महला ५ शब्द ७३

(१०) वेद पड़ै मुख मीठी वाणी। जीआ कुहत न संगै प्राणी।
कहु नानक जिस किरपा धारे। हिरदा सुध ब्रह्म वीचारे।

--राग गौड़ी महला ५ श० १०७

(११) मन संतोष सरव जीअ दइआ। इस विध व्रत संपूर्ण भइआ।

--राग गौड़ी थिति महला ५ श० ११

(१२) दुख न देई किये जीअ पति सेती घर जावउ।

—राग गौड़ी वार महला ५ वार १७

(१३) रोजा धरे मनावै अलहु सुआदति जीअ संघारै।
आप देख अपर नहीं देखै काहे कउ भख मारै।१
काजी साहिब एक तोही, महि तेरा सोच विचार न देखै।
खबर न परहि दीन के वउरे ताते जनम अलेखै।

—आसा कवीर जी श० ८६

[१४] जीअ वधहु सुधरम कर थापहु अधरम कहहु कत भाई।
आप स कउ मुनि "वर" र' थापहु का कउ कहहु कसाई।

--राग मारू कवीर जी श० १

[१५] जउ सब महि एक खुदाइ कहत हउ तउ क्यों मुरगी मारै ।
--राग प्रभाती कबीर जी शब्द ४

[१६] कबीर जीअ जु मारहि जोर कर कहते हहि जु हलाल ।
दफतर दई जब काढ है होइगा कउन हवाल ।
—कबीर जी सलोक १६६

[१७] कबीर जोर कीआ सो जुलम हैं लेइ जवाब खुदाइ ।
दफतर लेखा नीकसै मार मुहे मुहि खाइ ।
—कबीर जी सलोक २००

[१८] तीरथ देख न जल महि पैसउ जीअ जंत न सतावउ गो ।
—रामकली नामदेव शब्द २

[१९] सिमरन भजन दइआ नहि कीनी तउ मुख चोटा खाहिगा ।
—राग मारू जैदेव जी शब्द १

[२०] हिंसा तउ मनते नहीं छूटी जीअ दइआ नहीं पाली ।
—सारंग परमानन्द जी

[२१] अठ सठ तीरथ सगल पुन जीअ दइआ परवाण ।
--राग माझ महला ५ श० १२

[२२] कुदमु करै गाडर जिउ छेल । अचिंत जाल काल चक्र पेल ।
—राग रामकली महला ५ श० ५२

[२३] खसम पछानि तरस नहि जीअ महि मार मणीकर फीकी ।
आप जनाइ अवर कउ जानै तब होइ भिसत सरीकी ।।
—आसा कबीर जी शब्द १७

[२४] कबीरा राती होवहि कारीआ कारे उभे जन्त ।
लै फाहे उठ धावदे सि जानि मारे भगवन्त ।
--कबीर सलोक १०

[२५] अलप अहार सुलसी निंद्रा दया क्षमा तन प्रीत ।
--रामकली पातशाही १० श० १

[२६] मजन तेग बर खूंन कस बेदरेग।
तुरा नीज खूंनसत वा चरख तेग।
—जफर नामा पातशाही १० छन्त ६६

किसी की गरदन पर बेदरेग होकर तेग न चला। तेरी गरदन भी आशी तेग से काटी जायगी।

[२७] सींह पजूती (पकड़ी) बकरी मरदी होई खिड़खिड़ हंस्सी।
सींह पुछै विसमाद (आश्चर्य) हुइ इत अउसर कित रहसर हंस्सी। विनहु करेंदी बकरी पुत्र असाडे कीचन खस्सी।
अक धतूरा खाधिआं कुहि कुहि खल उखल (उधेड़ कर) विणस्सी मास खाण गल बढके हाल तिनाड़ा कउण होवस्सी।
गरव गरीवी देह खेह खाज अखाजा अकाज करस्सी।
जग आइआ सभ कोई मरसी।
—वारा भाई गुरदास वार २५ पौडी १७

[२८] कुहे कसाई बकरी लाइ लूण सीख मास परोआ।
हस हस बोले कुही दी खाधे अवक हाल एह होआ!
मास खाण गल छुरी दे हाल तिनाड़ा कौण अलोआ।
—भाई गुरदास दीआं वारा वार ३७ पौड़ी २१

[२६] जेकर उधरी पूतना विहु पीआलन कम न चंगा।
गनिका उधरी आखीऐ पर घर जाइ न लइऐ पंगा।
वालमीक निसतारिआ मारे वाट न होइ निसंगा।
वधक उधरे आखीअन फाही पाइ न फडीऐ टंगा।
जे कसाई उधरिआ जीआ धाइ न खाइऐ भंगा।
पार उतारे वोहिथा सोइना लोह नहीं इक रंगा।
इत भरवासे रहण कुढंगा।
—भाई गुरदास दीआं वारां वार ३१ पौड़ी ६

यह सब पाठ मद्य, मांस निषेध वाचक हैं।

आगे वह शब्द लिखूंगा, जो मांस के पक्ष में कहे जाते हैं, प्रायः एक शब्द अधिक प्रसिद्ध है, उसपर विशेष विचार किया जायगा।

[१] क्या खाधे क्या पैधे होइ। या मन नांहीं साचा सोइ।
क्या मैदा क्या घिउ गुड़ मिठा क्या मैदा क्या मास।

—माझ वार महला १ वार १०

इस शब्द में ईश्वर भगति पर बल है, और मास खाने का कोई विधान नहीं है।

[२] इक मास हारी इक त्रिणखाहि।

—माझ वार महला १ वार १४

इसमें सिंहादि मांसाहारी है, अजादि तृण खाने वाले हैं। खाने का विधान इसमें भी नहीं है। इस शब्द का आरंभ ही 'सींहां वाज' से है।

[३] जीआ का आहारु जीअ खाणा एहु करेइ।

—रामकली वार महला ३ वार १८

इस शब्द में ईश्वर के दातापन का वर्णन है। यथा—
नानक चिंता मत करहु चिंता तिसही होइ।
जल महि जंत उपाइअन तिना भी रोजी देइ।
ओथे हटु न चलई ना को किरस करेइ।
उदा मूल न होवई ना को लए न देइ।
जीआ का आहार जीअ खाणा एह करेइ।
विच उपाए साइरा तिना भी सार करेइ।
नानक चिंता मत करहु चिंता तिस ही होइ।

इस सारे पाठ को मिलाकर पढ़ने से ईश्वर के दाता होने का बोध होता है। मांस खाने का विधान किसी प्रकार भी नहीं।

आगे वह शब्द लिखता हूँ जिस पर विवाद है।

सलोक म० १. पहिला मासहु निंमिआ मासै अन्दरि वास।
जीउ पाइ मास मुहि मिलिआ हड़ चम तन मास।
मासहु बाहर कढिया मम्मा मास गिरास।
मुहु मासै का जीभ मासै की मासै अन्दरि सास।
बड़ा होआ वीआहिआ घर लै आइआ मास।
मासहु ही मास ऊपजे मासहु सभो साक। १

महला १. मासु मासु कर मूरख झगड़े गिआन धिआन नहीं जाणै।
कउण मास कउण साग कहावै किस महिपाप समाणै।
गैंडा मार होम जग किए देवतिआं की वाणै।
मास छोड़ बैसि नक पकड़हि राती माणस खाणै।
फड़ करि लोकां नो दिखलावहि गिआन धिआन नहीं बूझै।
नानक अंधे सिउं क्या कहीऐ कहै न कहिआ बूझै।
अन्धा सोइ जि अन्ध कमावे तिस रिदै सिलोचन नाहीं।
मात पिता की रकतु निपन्ने मछी मास न खांही।
इसत्री पुरुषै जानिस मेला ओथे मंधु कमाही।
मासहु निंमे मासहु जम्मे हम मासै के भांडे।
गिआन धिआन कछु सूझै नाहीं चतुर कहावे पांडे।
बारह का मास मन्दा सुआमी घर का मास चंगेरा।
जीअ जंत सभ मासहु होए जीइ लइआ वसेरा।
अभखु भखहि भखु तजि छोड़हि अंध गुरु जिन केरा।
मासहु निंम्मे मासहु जम्मे हम मासै के भांड़े।
गिआन धिआन कछु सूझै नाहीं चतुर कहावे पांडे।
मासु पुराणी मासु कतेबी चहु जुगि मास कमाणा।
जजि काज वीआहि सुहावै ओथे मास समाणा।
इसत्री पुरुष निपजहि मासहु पातसाह सुलताना।

जे ओइ दिसहि नरक जांदे तां उनका दान न लैणा।
देंदा नरकि सुरगि लैंदे देखहु एह धिङाणा।
आप न बूझै लोक बुझाए पांडे खरे सिआणा।
पांडे तू जाणे ही नाहीं किथहु मास उपन्ना।
तोइअहु अन्न कमाद कपाहा होइअहु त्रिभवन गन्ना।
तोआ आखै हउ वहु विधि हछ तोए वह त विकारा।
एते रस छोड़ होवै संनिआसी नानक कहै विचारा। २।

—मलार बार महला १ वार २५

इस शब्द में मांस शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है, शरीर मांस है, मांस में ही शरीर की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न होते ही स्तन जिससे दूध मिला मांस था। विवाह होने पर पति-पत्नी मांस के हैं, आदि पुनः प्रश्न है—पंडित जानता नहीं, क्या मांस है और क्या शाक है। अन्त में प्रश्न है—मांस कहां से उत्पन्न हुआ। जिसका उत्तर दिया है-सब कुछ जल से ही होता है। इस सारे शब्द में मांस खाने का कहीं भी वर्णन नहीं है। इसलिए यह शब्द मांस खाने का पोषक कदाचित् भी नहीं है।

इस शब्द की उत्थानिका यह है। गुरु नानक देव जी कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण पर गए हुए थे, वहां उन्होंने मांस पकाना आरम्भ किया, पंडितों ने आक्षेप किया, उस समय गुरुजी ने यह शब्द पढ़ा।

इस शब्द पर श्री निधानसिंह जी आलिम, जो नामधारी दरबार के प्रधान हैं, उन्होंने विस्तारपूर्वक विचार किया है, उन्होंने जो इस विषय पर पुस्तक लिखी है, उसका नाम 'सिख धर्म ते मास है' मैं उनका पाठ ही लिखता हूं। पाठक ध्यानपूर्वक पढ़कर निश्चय करें कि यह शब्द मांस का पोषक है वा नहीं।

'कुरुक्षेत्र विषे सूरज ग्रहण दे समें श्री गुरु नानकदेव जी दे मास रिनण (पकाने) दा प्रसंग मासाहारीआं दी तकड़ी (विशेष)

ओट वणिआ होइआ है। परन्तु इस द्वारा गुरु जी दा मास खाण या प्रचार करना किसे तरां भी सिध नहीं हुन्दा। एस प्रसंग नूं सिख इतिहास दे लेखकां ने जिस तरां लिखिआ है, पहले वाकफी वास्ते एथे अंकित करके उपरंत (पश्चात्) उसदा विचार पाठकां दी भेटा कीता जाऊगा।" पृष्ठ ४०

आगे आलिम जी इतिहासकारों का मत बतलाते हैं, उसका सार इस प्रकार है। जन्म साखी भाई वाला पृष्ठ ३२७-३२८

पटने दे राजे दा पुत्र दुश्मनां दा भजाइआ होइआ आइआ, उसने मृग दा मास दित्ता। गुरु जी ने बाले नूं कहके रिनणा धरिआ। लोकां ते संनिआसिआ ने आके पुछिआ, की है? गुरु जी ने कहिआ मास है, सवाल करने ते राग मलार वाला शब्द कहिआ। सब चुप होगए। पिछों गुरु जी ने उसे देगचों तसमई (दूध पाक) कढ के उसे राजकुमार दे हथीं षट् दरसन नूं वरताई।

गुरु विलास पाताशाही ६ अध्याय २ में लिखिआ है—

गुरु जो ने वाले नूं भेज के मच्छी मंगवाई, ते रिनणी धरी। पता लगण ते नानू पंडित संनिआसीआं समेत आके झगड़न लागिआ। जद ओह हारके चुप हो गए, तां गुरु जी ने कहिआ, कुंनी (हांडी) भन सुट। जद बाले ने कुंनी भन्नी, तां विचों कुझ भी न निकलिआ ओह बड़े हैरान होए।

नानक प्रकाश में लिखिआ है—

'गुरु नानकदेव जी दे चित विच चरचा करन दी इच्छा होई, ओदों नूं इक राजकुमार ने इक मृग मार के भेटा कीता। गुरु जी ने रिनणा धरदित्ता, पंडितां दे पूछण नाल मलार दा शब्द कहके समाधान कीता, ओह चुप हो गये, फेर औन्हांने कहिआ, परब दे समें मरयादा रखनी चाहीदी है, तां गुरु जी ने

कहिआ, गऊआं दा दुध मंग वाके खीर चाढी है, सभ नूं राजकुमार दे हथीं खीर खवाई।

तवारीख गुरु खालसा विच राजकुमार दे थां हांसी वाले अम्रितराय दा पुत जगतराय लिखिआ है, और गलां पहले वरगीआ ही हन।

श्री गुरु नानक प्रबोध विच बकरा मारके रिनणा लिखिआ है पंडिता दा ओणा ते विचार करना पहले वरगा ही है।

इनमें कई पुस्तक पद्य में हैं, उन सब का भावार्थ ही यहां लिखा है, उनका पाठ यह नहीं है. पाठक इसका ध्यान रखें।

इस पर विचार करते समय आलिम जी लिखते हैं।

'पहिलां तां एस लेखक ही इकमत नहीं हन, जीहते पता लगदा है एह गल असल विच कुछ नहीं। जे कुछ हुंदी, तां लिखण वालिआं विच ऐनां फरक न हुन्दा। जे कुछ होई है, तां एहो ही है, लोकां नूं सम ैण वासते इक ढंग बणाइआ सी, एसे करके अन्त नूं खीर दिखाई ते तसमई ही खवाई है। एस कहाणी विच किते वी गुरु जी दा मास खाणा जां खवौणा नहीं लिखिआ, एस करके एह शब्द मास खाण दी आगिआ नहीं दिंदा।

जे कोई मासाहारी सज्जण अजे वी हठ करी जाए, कि एन्दां सलोकां तो मास खाणा ही विशेष सिध है, तां ओस नूं एस गल वल धिआन देणा चाहीदा है, कि एन्हां सलोका विच केहड़े मास दा किसी तरींके नाल खाणा लिखिआ होइआ है क्योंकि एथे गुरु जी ने माता, पिता, भैण, भरा, इसत्री, पुरुष सभनां नूं मास रुप विच ही वर्णन कीता है। मूंह, जीभ, हड, चम ते थण (स्तन) आदि सभ समग्री मास दी है, जिसनूं कुदरत दे नेम अनुसार सभ लोक किसे न किसे तरां वरत रहे हन, परन्तु मासा-

हारी पुरुषां दे झटके या हलाल दे तरीकिआं नाल इस मास दी वरतों तां असभ्य श्रेणी दे मनुष्य भी नहीं करदे। माता दे थणां दुआरा दुध पीके तां मनुष दी सन्तान अज तक पलदी रही हें ते अगे नूं पलदी रहेगी, पर जे मांसाहारी सिखां दे तरीके नाल मावां दे थण कुतर के ओन्हां दा महाप्रसाद बणा बचिओ नूं छकौण (खिलाने) का प्रोगराम बणाइआ जावे तां मावां ते बच्चे दोहा दे ही जीवन दा की हशर (परिणाम) होवेगा ? ऐसे तरां इसत्री दे पति गृहसत दी मरयादा अनुसार जीवन सन्तान दे पैदा करन दे रूप विच परसपर निरवाह करदे हन, पर जे ओह टोके कुहाड़िआं लैके महाप्रसाद (मांस) बणान लई इक दूजे दे हुआले होणा शुरू कर देण, तां एह राड़े किनाकुचिर लगणगे। ते मनुष दी नसल दा कीरतन सोहिला (अन्तिम पाठ) पढ़न विच किनां कू समा दरकार होवेगा ? एसे करके गुरु जी कहिं दे हन, कि हे मूरख ! मास मास करके पिआ झगड़दा है, पर गिआन धिआन द्वारा एह समझण दी कोशिश नहीं करदा, कि मास केहड़ा है, ते साग कौण है ? अते किसदे वरतण विच पाप है ? एह प्रशन बड़े महत्व दे हन, क्योंकि गुरु जी, मां, पिउ, इसत्री, पुत्र, राजा, प्रजा, सभनां नूं मास रुप ही कह रहे हन। भावे सभदा मास इको है, ते सभ इके ही बणत देवणे होए हन, परवरतों दा विहार (व्यवहार) सभ दा वखोवखरा है। जिस तरां इके इसत्री नूं पति इसत्री भाव नाल तक रिहा है, पुत्र माता भाव नाल सतकार रिहा है, भरा भैणा दी द्रिष्टि नाल तक रिहा है, अते पिता पुत्री दी नजर नाल वेख रिहा है। जे मासाहारी दी दरिसटी नाल देखिआ जावे, तां इको ही है, पर विवहार विच फरक क्यों पैगिआ है। 'मास मास कर मूरख झगड़े गिआन धिआन नहीं जाणे। कउण मास कउण साग कहावै किस महि पाप समाणे' दी उलझन वी एथे ही सुलझेगी, जिसनूं मासाहारी पुरुष अज तक

नहीं सुलझा सकिआ। गुरु जी ने एथे सारा अहारते मासाहार नूं सामणे रख दिआ होइआं पूछ कीती है, कि माता, पुत्र, भैण, भाई, लड़की हैन तां सभ मास दे भांडे, पर एन्हां विचों मास केहड़ा है, ते साग केहड़ा है? ते किस दे किस तरां खाण वरतण विच पाप हुन्दा है। सो आपणी इसत्री नाल इसत्री वाला विवहार करना साग (यानी उत्तम विहार) है, पर लड़की, भैण तथा माता नूं इसत्री दी द्रिशटी नाल वेखणा मास (अर्थात् अनुचित विवहार) है, जिस विच पाप है।

एस विचार अनुसार एन्हां सलोकां विच जगत प्रसिध मास दा खाणा इष्ट नहीं, सगों मास रुप संसार विच आपणो आपणो अधिकार अनुसार बरतें करनी प्रयोजन है। तांते गुरवाणी अते इतिहास दे चानणे (प्रकाश) हेठ श्री गुरु नानक देव दे मास सम्बन्धी मत बावत जरा भी हनेरा अन्धकार नहीं रह जांदा। जद आप मास खाणा वालियां दे घर दा भोजन तक ग्रहण नहीं करदे अर देवलत जैसे मांसाहारी राखसां राक्षसों तो मास छुडौण थी विना उन्हां नूं उपदेश नहीं करदे, अते मके मदीने विच, जिथे कि आपदे इरद गिरद मासाआहारीआं दे ही मजमे सन, मास बावत निरभै होके आपणा एही मत प्रगट करदे हन, कि मास खाणा पाप है, तां कुरुक्षेत्र विच ब्राह्मण नूं मास खाण दा उपदेश किवें कर सकदे हन? तांते मलार दे सलोक दा तातपरय केवल नानूं जैसे पंडित दे पांडित्य दा अभिमान दूर करना अते उन्हां लोकां नूं सिधे रसते पौणासी। पृष्ठ ४२-४६

इस प्रकार श्री निधानसिंह जी आलिम ने इस शब्द पर विचार किया है। उनका निर्णय यही है, कि रागमलार का यह शब्द मांस भक्षण की आज्ञा नहीं देता है। प्रत्युत माँस भक्षण का निषेध करता है। यही पक्ष ग्राह्य है।

उन्नीस

नमस्कार

आर्यसमाजी परस्पर मिलते समय नमस्ते शब्द का प्रयोग करते हैं। रात को सोते समय, प्रातःकाल उठते समय, अन्य मिलन समय परस्पर इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। सत्यार्थ-प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लिखा है। "दिन रात में जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों, तब तब प्रीति पूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे से करें।

यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में नमस्कार का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अनेकों को कहा गया है, वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग मिलता है। इसलिए यह शब्द आर्य संस्कृति में प्राचीनकाल से है।

सामान्य रूप से इस शब्द के अर्थ, सत्कार करना, झुकना आदि हैं और आशीर्वाद भी है।

सिख पंथ में इसका प्रयोग इस समय नहीं है, किंतु आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी तथा दसम गुरुग्रन्थ साहिब में इसका प्रयोग है। मैं उन शब्दों में से कुछ शब्द लिखता हूं—

इसके तीन भाग करता हूं। प्रथम ईश्वर को नमस्कार, दूसरे गुरु को नमस्कार, तीसरे अन्य मनुष्यों को नमस्कार।

(१) क. आदि गुरए नमः। जुगादि गुरए नमः।

—सुखमनि महला ५ सलोक १

ख. तुमरी कृपा ते गुन गावै नामधिआइ धिआइ प्रभकउ नमसकारे। —राग आसा महला ५ श० ३६

घ. गरभ घोर महि राखन हार।
तिस ठाकुर कउ सदा नमसकार।
—राग गौंड महला ५ शब्द ५

ङ. हरए नमस्ते हरए नमः। हरि हरि करत नहीं दुख जमः।
—गौंड नामदेव श० ५

(२) क. सतगुरए नमः। गुरदेवए नमः।
गौडी सुखमनि महला ५ सलोक १

ख. तिस गुर कउ सभ नमसकार करहु जिन हरि की हरि गाल गलोईऐ। —राग वडहंस वार महला ४ वार ४

ग. हउ सतगुर आपणे कउ सदा नमसकारी जिति मिलीऐ हरनाम मैं जाता। —राग वडहंस वार महला ४ वार १६

घ. सदा सदा तिस गुरु कउ करी नमसकार।
—गौडी महला ५ अष्टपदिआं अष्ट० ६

ङ. गुरु के चरन नमसकार। भव जल उतरहि पार।
—रामकली महला ५ श० ४०

(३) क. नाम जपे नाम अराधे तिस जन कउ करहु सभ नमसकार।
—रामकली वार महला ३ वार ६

ख. जिस अंतर हिरदा सुध है तिस जन कउ करि नमसकारी।
—बडहंस वार महला ३ वार २

ग. जाके हिरदे बसिआ मेरा हरि हरि तिस जन कउ करहु नमसकार! —राग वैराडी महला ४ शब्द ५

घ. इक गुर प्रसादी उबरे तिस जन कउ करहि सभ नमसकार।
—सारंग वार महला ४ वार २८

ङ. हरि के दास के चरण नमसकारहु।
—गौडी महला ५ श० १२६

च. सफल ओह माथा सन्त नमस्कारसि ।

—गौडी महला ५ शब्द १२६

छ. सन्त पिआरे कारज सारे नमसकार करि लगे सेवा ।

—आसा छन्त महला ५ छन्त १

ज. पतित पवित्र लीए कर अपने सगल करत नमसकारो ।

—गुजरी महला ५ शब्द १०

इनमें प्राय: नमस्कार शब्द आया है । अत: सिख विद्वान् इस का अर्थ क्या करते हैं, यह लिखना आवश्यक है ।

नमो—दे० नमसकार, यथा-हरि संतन कर नमो नमो

नमसकार-सं० प्रणाम, मथा टेकणा, यथा कर नमसकार पूरे

गुरदेव-गुर गिरा रथ कोष । पंडित तारासिंह जी

नमसकार—सं० संग्या, नमस्कार, प्रणाम, वंदना नमसकार डंडउत वंदना । —विलावल महला ५

नमो—नमस्कार हरि संतन करि नमो नमो ।

—गउ० अ० महला ५

गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष । भाई कान्हसिंघ जी ।

आगे दसम ग्रन्थ जी के पाठ लिखता हूं—

१. नमसतं अजाते । नमसतं अपाते ।
नमसतं अमजत्रे । नमसतसत अजवे । —जपुजी १७

२. नमो सरव काले । नमो सरव दिआले ।
नमो सरव रूपे । नमो सरव भूपे । —जपुजी १९

३. घर घर प्रणाम चित चरन नाम । —जपुजी १६८

४. प्रणवो आदि एकं कारा । जल थल महिअल कीओ पसारा ।
—अकाल उसतत छन्द १

इन सब पाठों से सिद्ध है कि गुरु घर में प्रथम नमस्कार शब्द का प्रयोग था ।

———

स्त्री-जाति

आर्यसमाज के प्रचार से पूर्व स्त्रियों को शूद्र के समान अर्थात् सबको शूद्रा माना जाता था। इनको पढ़ने का भी अधिकार न था पढ़ने का अधिकार ऋषि दयानन्द जी ने दिया।

सिख पंथ में प्रथम स्त्रियों को चरण घाल दी जाती थी खंडे की दीक्षा अर्थात् खंडे की पाहुल का अधिकार न था अब वह प्रथा भी बन्द होकर स्त्रियों को भी खंडे का अमृत ही छकाया जाता है। सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है। जैसा यह निषेध है—

स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़ें, यह श्रुति है।

—(मीमांसा न्याय प्रकाश पृष्ठ १६६)

उत्तर—सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। और तुम कुआ में पड़ो, और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है।

—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३ पृष्ठ ४३, ४४

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैताः वर्धते तद्धि सर्वदा ॥
तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ।

—मनु० अ० ३ श्लोक ५५-५७ । ५६

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कार पूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रखें, जिनको वहुत कल्याण की इच्छा हो, वे ऐसे करें ।

जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उसमें विद्या-युक्त पुरुष होके देव संज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल हो जाती है । जिस घर वा कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्री-लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ।

इसलिए ऐश्वर्य की कामना करने हारे मनुष्यों को योग्य है, कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण, वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें । —सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ५८

यह ध्यान रखना चाहिये, पूजा शब्द का भाव सत्कार करना है गृहस्थ में स्त्री पुरुष का व्यवहार कैसा हो—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्तते ॥

स्त्रियांतु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।
—मनु० अ० ३ श्लोक ६०-६२

जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कलह होता है वहां दौर्भाग्य और दारिद्रय स्थिर होता है।

जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती, तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता।

जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुछ प्रसन्न होता उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है।

स्त्री का कर्तव्य

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।
—मनु० अ० ५ श्लोक १५०

स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे, अर्थात् यथायोग्य खर्च करे और सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे, जो औषधि रूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवे, जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखे, पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे, घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे। —सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ५८

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में श्री गुरु नानकदेव जी ने लिखा है, स्त्री की निन्दा नहीं करनी चाहिए। यथा—

भंडि जंमीऐ भंडि निमिऐ भंडि मंगण वीआहु।
भंडहु होवे दोसती भंडहु चलौ राहु।

भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधान।
सो क्यों मन्दा आखीऐ जितु जंमहि राजान।
भंडह ही भंड ऊपजै भंडै बाझु न कोइ।
नानक भंडे बाहरा एको सचा सोइ।
—राग आसा वार महला १ वार १६

इस शब्द में भंड पद के अर्थ स्त्री हैं।

आदि ग्रन्थ जी में एक बात और भी है। पाठकों ने पढ़ा होगा। जब पाठ का पता लिखा जाता है तो वहां महला शब्द भी होता है। इसका भाव इस प्रकार है—

महला १	गुरु नानकदेव जी
महला २	गुरु अगददेव जी
महला ३	गुरु अमरदास जी
महला ४	गुरु रामदास जी
महला ५	गुरु अर्जुनदेव जी
महला ६	गुरु तेगबहादुर जी

अब प्रश्न होगा, कि गुरु महाराज जी के साथ महला शब्द का प्रयोग क्यों होता है। इसके लिये मैं पंडित तारासिंह जी का पाठ लिखना उचित समझता हूँ—

महला। सं० शास्त्री के कोषों में महला, महेला दोनों स्त्री के नाम हैं, गंगा को गंग कहनेवत्। महला से महल बने हैं, महेला से महेली बने हैं, आदि ग्रन्थ जी मों महल पहला, महल दूजा आदिक पाठों में इसत्री (स्त्री) भाव का कथन है, क्योंकि आदि ग्रन्थ जी मों सखी भाव का दर्शन है। सखी भाव की भावना से ही वाणी रचना करके गुरों ने अपने को महल लिखा है।
— गुरु गिरार्थ कोष पृष्ठ ५१३

इस प्रकार जब गुरु जी ने अपने आप को स्त्री भाव में प्रगट किया है। तब स्त्री को निन्दनीय कैसे कहा जा सकता है।

इक्कीस

वेष

वेष से मेरा भाव यह है, जैसे कहा जाता है। अमुक प्रकार से बाल रखने चाहियें, अमुक प्रकार के वस्त्र पहनने चाहियें, यदि कोई उससे विपरीत करे तो उसे पतित समझा जाय।

वेष का एक कारण तो देशकाल है। किसी देश में कोई वेष है किसी में कोई है। यथा मद्रास प्रान्त में गले में वस्त्र न पहन कर बाजार जाना साधारण बात है, किन्तु पंजाब में इस प्रकार जाना ठीक नहीं माना जाता। बंगाल में सिर पर कुछ न रखना ठीक है किन्तु दूसरे प्रान्तों में नहीं। अब तो अन्य प्रान्तों में भी ऐसी परिपाटी होगई है।

इस प्रकार काल भेद से वेष में अन्तर हो जाता है। उत्तर भारत में शीतप्रधान काल में जो वेष होता है। वह ग्रीष्मऋतु से भिन्न ही होता है। इसका निमित्त केवल काल ही है।

इसी प्रकार कई वेष मनुष्य अपनी रुचि से बनाता है। क्यों कि सबकी रुचि एक समान नहीं है। कोई पगड़ी बांधना ही अच्छा जानता है और कोई टोपी रखना पसन्द करता है। इस प्रकार के जो भेद वेष में हैं, उन पर आपत्ति करना ठीक नहीं है। क्योंकि जिस देश के जो अनुकूल है, वह उससे ही सुख में रहते हैं और जिस काल में जिसकी आवश्यकता है वह भी रखना ही होगा। रुचि की प्रधानता तो सब पर है। किन्तु जहां इन वेषों में धर्म को मिलाया जाता है. अर्थात् इस प्रकार के वेष से धर्मात्मा

हो जाता है और उससे विपरीत होने से वह अधर्मात्मा हो जाता है। यह जो विवाद है यह ठीक नहीं है। यही निन्दनीय है। यह त्याज्य है। यथा—

एक मत है—काषाय रंग के वस्त्र पहनने से साधु हो जाता है। दूसरे कहते हैं—काषाय नहीं श्वेत वस्त्र ठीक हैं। कई पीत वर्ण के वस्त्र मानते हैं तो दूसरे नीले वा लाल वस्त्र पहनना धर्म बतलाते हैं।

इसी प्रकार सिर के केशों का विचार है। एक मानते हैं—मुण्डित होना ठीक है, दूसरे कहते हैं, जटिल होना चाहिये। जटिल में भी सिध ववरान हो, व पट्टीदार जटा हो अथवा बटी हुई हो, इसका भेद माना जाता है। मुंडितों में भी कैसा मुंडन हो, इसके भी अनेक भेद हैं। इस मुंडन में भी धर्म का सम्बन्ध माना जाता है। इसी प्रकार तिलक को लें। तिलक किस वस्तु का लगाना चाहिये, उसका रंग श्वेत हो, काला हो, पीत हो। यह भी विवाद है। उसके पश्चात् गोल हो, टेढ़ा हो, ऊंचा हो, इसका भी भेद है। इसी प्रकार धोती, तहमद, पाजामा, पतलून में विवाद है। यदि कच्छ रहित हो, तो धर्मकृत्य में उसे आज्ञा होगी कच्छ लगाओ। और दूसरे कच्छ सहित को कहेंगे कच्छ खोल दो। जो धोती की दशा है, यही पाजामा की अवस्था है।

कई लोग माला पहनते हैं, उसमें भी विवाद है। माला किस चीज की हो। अर्थात् काष्ठ की हो। लोहे की हो, ऊन की हो आदि-आदि। माला फेरने में भी झगड़ा है। कोई माला के मनके अन्दर से बाहर को डालता है और दूसरा बाहर से अन्दर को करता है। एक तर्जनी अंगुली लगा कर माला फेरने को धर्म के विरुद्ध बतलाता है, तो दूसरा तर्जनी का लगाना आवश्यक बतलाता है, तुलसी माला वाला रुद्राक्ष वाले को भ्रष्ट मानता है,

रुद्राक्ष वाला तुलसी की निन्दा करता है। सूत वाला लोहे की माला को तमोगुण की पदवी देता है। तो लोहे वाला सूत से घृणा करता है। इस प्रकार इन सब बातों में मतभेद है। यदि रुचि अनुसार भेद होता तो कोई आपत्ति न थी। किन्तु जब इन को धर्म के साथ मिला दिया गया, तो यह सब बातें आपत्ति-जनक हो जाती हैं।

धर्म प्रचारक व्यक्ति प्रायः इसका निषेध करते हैं किन्तु आश्चर्य है। कि उनके नाम लेवा भी ऐसे ही काम करते जाते हैं, जैसे दूसरे करते हैं। इसलिए सिद्धान्त तो मनु जी वाला ही ठीक है। 'न लिंगं धर्म कारणम्।' अर्थात् बाहर के चिह्न (लिंग) किसी को धर्मात्मा नहीं बनाते, धर्माधर्म का सम्बन्ध वेष से नहीं है। आत्मा से है। अतः वेष पर विशेष बल देने की आवश्यकता नहीं, सत्य, क्षमादि गुणों पर बल देना चाहिये।

आगे प्रथम ऋषि दयानन्द जी का पाठ, पुनः श्री आदि ग्रन्थ जी के शब्द, पश्चात् दसम ग्रन्थ का लेख लिखूंगा, ताकि पाठक जान लें कि इस वेष विषय में इनका मत क्या है।

१—कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे, तो भी जिस किसी आश्रम में वर्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियों में पक्षपात रहित होकर स्वयं धर्मात्मा और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे। और यह अपने मन में निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषाय वस्त्र आदि चिह्न धारण धर्म का कारण नहीं है, सब मनुष्य आदि प्राणियों के सत्यापदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है।

—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ८०।

२—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दस लक्षण युक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन करें—

(१) धृति=सदा धैर्य रखना।

(२) क्षमा=जो कि निन्दा, स्तुति, मानापमान, हानि-लाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना।

(३) दम=मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे।

(४) अस्तेय=चोरी त्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेद विरुद्ध उपदेश से पर पदार्थ को ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहूकारी कहाती है।

(५) शौच=रागद्वेष, पक्षपात छोड़के भीतर, और जलमृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी।

(६) इन्द्रिय निग्रह=अधर्माचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म में ही सदा चलाना।

(७) धीः=मादक द्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य प्रमाद आदि को छोड़के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास से बुद्धि को बढ़ाना।

(८) विद्या=पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना विद्या, इससे विपरीत अविद्या है।

(९) सत्य=जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना वैसा बोलना और वैसा ही करना भी।

१०—अक्रोध=क्रोध आदि दोषों को छोड़के शांत्यादि गुणों को ग्रहण करना धर्म का लक्षण है।

इस दस लक्षण युक्त पक्षपात रहित न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें। और इसी वेदोक्त धर्म ही में

आप चलना और दूसरों को समझा कर चलाना संन्यासियों का विशेष धर्म है।

सत्यार्थप्रकाश पृ० ८०-८१।

(३) देखिये चक्रांकित वैष्णवों की अद्भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मंत्रस्तथैवच।
अमी हि पंच संस्काराः परमैकान्त हेतवः॥

—रामानुज पटल

अर्थात् (तापः) शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिन्हों को अग्नि में तपा के भुजा के मूल में दाग देकर पश्चात् दुग्ध युक्त पात्र में बुझाते हैं और कोई उस दूध को पी भी लेते हैं। अब देखिये, प्रत्यक्ष ही मनुष्य के मांस का भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं, कि बिना शंख, चक्र आदि के शरीर तपाए जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह 'आमः' अर्थात् कच्चा है, और जैसे राज्य के चपरास आदि चिन्हों के होने से राज-पुरुष जान उससे सब लोग डरते हैं। वैसे ही विष्णु के शंख, चक्रादि आयुधों के चिन्ह देखकर यमराज और उसके गण डरते हैं। और कहते हैं—

बाणा बड़ा दयाल का तिलक छाप और माल।
यम डरपे कालू कहे, भय माने भूपाल॥

अर्थात् भगवान् का बाना तिलक, छाप और माला धारण करना बड़ा है जिससे यमराज और राजा भी डरता है। (पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना (नाम) नारायणदास विष्णुदास अर्थात् दास शब्दांत नाम रखना (माला) कमल गट्टे की रखना (मंत्र) जैसे 'ओं नमो नारायणाय' यह उन्होंने साधारण जनों के लिये मंत्र बना रखा है······

अग्नि ही में तपाना चक्रांकित स्वीकार करें, तो अपने-अपने शरीर को भाड में झोंक के सब शरीर को जलावें, तो भी इस मंत्र के अर्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मंत्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिखा है।

—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १६२, १६३

(४) कोई एक मनुष्य वृक्ष के नीचे सोया था। सोता-सोता ही मर गया। ऊपर से काक ने विष्टा करदी। वह ललाट पर तिलकाकार हो गई थी। वहां यम के दूत उसको लेने आये। इतने में विष्णु के दूत भी पहुंच गये। दोनों विवाद करते थे, कि यह हमारे स्वामी की आज्ञा है, हम यमलोक में ले जायेगें। विष्णु के दूतों ने कहा, कि हमारे स्वामी की आज्ञा है, वैकुण्ड में ले जाने की। देखो इसके ललाट में वैष्णव का तिलक है। तुम कैसे ले जाओगे। तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। विष्णु के दूत सुख से उसको वैकुण्ठ में ले गये। नारायण ने उसको वैकुण्ठ में रखा। देखो जब अकस्मात् तिलक बन जाने का ऐसा माहात्म्य है, तो जो अपनी प्रीति और हाथ से तिलक करते हैं, वे नरक से छूट वैकुण्ठ में जावें, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

हम पूछते हैं, कि जब छोटे से तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें, तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा काला मुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं।

अब इनमें बहुत से खाकी लकड़े की लंगोटी लगा, धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेष कर लेते हैं, बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं, गांजा, भांग, चरस के दम लगाते, लाल नेत्र कर रखते, सबसे चुटकी-चुटकी अन्न, पिसान कौड़ी, पैसे मांगते गृहस्थों के लड़कों को बहका कर चेले बना लेते हैं। बहुत करके

मजूर लोग उनमें होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो, तो उसको पढ़ने नहीं देते, किन्तु कहते हैं, कि—

पठितव्यं तदपि मर्तव्यं दन्त कटाकटेति किं कर्तव्यम्।

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम, क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं, फिर दन्त कटा कट क्यों करना ? साधुवों को चार धाम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, राम जी का भजन करना।

जो किसी ने मूर्ख अविद्या की मूर्ति न देखी हो, तो खाखी जी का दर्शन कर आवें। —सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २२६

(५) खाखी, रात दिन लकड़, छाने (जंगली एरणे गोहे) जलाया करते हैं। एक महीने में कई रुपये की लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र लेलें, तो शतांश धन से आनन्द में रहें। उनको इतनी बुद्धि कहां से आवे ? और अपना नाम उसी धूनी में तपने ही से तपस्वी धर रखा है। जो इस प्रकार तपस्वी हो सकें, तो जंगली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी हो जावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करने से तपस्वी हो जाय, तो सब कोई कर सके।

—सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २२८

इस पुस्तक में इसी प्रकार पाखण्ड का खण्डन करके वेदोक्त सत्य धर्म का प्रकाश किया है। जिसको अधिक जानने की अभिलाषा हो उसे इस पुस्तक को स्वयं पढ़ने का कष्ट करना चाहिये। आगे आदि श्री गुरु ग्रंथ जी के शब्द लिखूंगा।

(१) बहु भेख कीआ देही दुःख दीआ। सुहुवे जीआ अपना कीआ। —राग आसा वार महला १ वार ६

(२) भसम चड़ाइ करे पाखंडु। माइआ मोह सहे हि जम डंडु। —राग रामकली अष्टपदियां महला १ अष्ट० २

(३) भेखी हाथ न लभई तीरथ नहीं दाने। पूछहु वेद पड़ंतिआं मुठी विणु माने। — मारु अष्टपदियां महला १ अष्ट० ६

(४) वारह महि रावल खपि जावहि चहु छिअ महि संनिआसि। जोगी कापड़ीआ सिरखु थे विन शवदे गल फासी।

—राग प्रभाती महला १ शव्द १६

(५) इक वण खंड वैसहि जाइ सदुन देव ही। इक पाला ककर भंन सीतल जल हांवही। इक भसम चड़ावहि अंग मैल न धोवही। इक जटा विकट विकराल कुल घर खोवही। इक नगन फिरहि दिन राति नींद न सोवही। इक अगनि जलावहि अंगु आप विगोवही। विणु नावे तन छार क्या कहि रोवही।

—मलार वार महला १ वार १५

(६) अखर पड़ि पड़ि भुलीऐ भेखी वहुत अभिमान। तीरथ नाता क्या करे मन मैल गुमान। गुरु विन किन समझाइए मन राजा सुलतान। —स्री राग अष्टपदियां महला १। १२

(७) काजी मुला होवहि सेख। जोगी जंगम भगवे भेख! को गिरही करमा की संधि। विन बूझै सभ खडीअसि वंधि।

—राग वसन्त महला १ शव्द ३

(८) वहु भेख करहि मन सांति न होइ। वहु अभिमान अपनी पति खोइ। से वडभागी जिन शवद पछाणिआ। वाहर जादा घर महि आणिआ। —राग वसन्त महला ३ शव्द ११

(६) रस कस खाए पिंड वधाए, भेख करे गुर शवद न कमाए, अन्तर रोग महा दुःख भारी, विसटा माहि समाहा हे।

—मारु सोलहे महला ३ शव्द १४

(१०) जोगी होवा जग भवा घर घर भीखिआ लेउ। दरगह लेखा मंगिऐ किसु किसु उत्तर देउ। भिखिआ नाम संतोष मड़ी

सदा सच है नाल। भेखी हाथ न लधीआ सभ वधी जम काल। नानक गला झूठीआ सचा नाम समाल।

—मारु वार महला ३ वार ६

(११) वहिले भेख भवहि दिन राती हउमै मैल न जाई।

—राग भैरउ महला ३ शब्द १४

(१२) भेख करै बहुतु चितु डोलै अंतर काम करोध अहंकार। अंतर तिसा भूख अति बहुती भउकत फिरै दरबार।

—राग भैरउ महला ३ शब्द १८

(१३) भेख कारहि वहु करम विगुते भाइ दूजे परज विगोई।

—सलोक वारांते वधीक महला ३ सलोक ३२

(१४) भगवे वेसि भ्रमि मुकति न होई।

—वसन्त महला ३ शब्द १२

(१५) इकि कन्द मूल चुणि खाहि वणखण्ड वासा। इक भगवां वेसु करि फिरहि जोगी संनिआसा। अंदर त्रिसना बहुत छादन भोजन की आसा। विरथा जनम गवाइन गिरहोन उदासा।

—माझ वार महला १। महला ४ वार ५

(१६) भेख धारी तीरथी भव थके ना गृह मन मारिआ जाइ। गुरमुखि एह मन जीवत मरे सच रहे लिवलाइ।

—सौरठ वार महला ४ वार २१

(१७) वाहर भेख वहुतु चतुराई मनुआ दहदिसि धावै। हऊ-मैं विआ पिआ शबद न चीनै फिर फिर जूनि आवै।

—राग सूही महला ४ शब्द १३

(१८) षट करम किरिआ कर वहु वहु विसथार, सिध साधिक जोगीआ करि जट जटा जट जाट। करि भेख न पाइऐ हरि ब्रह्म जोग हरि पाइऐ सत संगती उपदेस गुरु गुर संत जना खोलि खोलि कपाट। —राग कानडा महला ४ शब्द १०

(१६) भेख अनेक अगनि नहीं बुझै। कोटि उपाव दरगह नहीं सिझै। —गौड़ी सुखमनि महला ५ अष्टपदि ३

(२०) भेख दिखावै सच न कमावै। कहतो महली निकट न आवै। — सूही महला ५ शब्द ७

(२१) वेद पुकारै मुखते पंडित कामा मन का माठा। मोनी होइ बैठा इकाती हिरदै कलपन गाठा। होइ उदासी ग्रिह तज चलिओ छुटके नाही ठाठा। १। जीअ की कै पहि बात बात कहा। आप मुकत मोकउ प्रभ मेले ऐसो कहा सहा। रहाउ। तपसी करिकै देही साधी मनुआ दहदिस धाना। ब्रह्मचारी ब्रह्मचजु कीना हिरदै भइआ गुमाना। संनिआसी होइके तीरथ भ्रमिओ उस महि क्रोध विगाना। २। घूंघर बांध भाए रामदासा रोटीअन के उपावा। वरत नेम करम षट कीने बाहर भेख दिखावा। गीत नाद मुखि राग अलापै मन नहीं हरि हरि गावा। ३। हरप सोग लोभ मोह रहित हहि निरमल हरि के संता। ताकी धूड़ पाए मन मेरा जा दइआ करे भगवंता। —मारु महला ५ शब्द १५

(२२) भेखी प्रभ न पाइए विना सची सिखं।
--मारु वार महला ५ डखणे शब्द १३

(२३) मन महिं क्रोध महा अहंकारा। पूजा करहु बहुत बिसथारा। करि इसनान तन चक्र बणाए। अन्तर की मलु कब ही न जाए। १। इत संजम प्रभ किनही न पाइआ। भगउती मुद्रा मन मोहिआ माइआ। रहाउ। पाप करहि पंचां के बसरे। तीरथ नहाइ कहहि सभ उतरे। बहरि कमावे होइ निसंक। जमपुर बांध खरे कालंक। २। घूंघर बांधि वजावहि ताला। अंतर कपट फिरहि बेताला। वरमी मारी साप न मूआ। प्रभु सब किछु जाने जिन तू कीआ। ३। पूअर ताप गेरीके वसत्रा। अपदा का मारिआ ग्रिह ते नसता। देस छोडि परदेसहि धाइआ। पंच चंडाल नाले

लै आइआ । ४ । कान फराइ हिराए टूका । घर घर मांगे त्रिपतावन ते चूका । वनिता छोडि वद नदरि पर नारी । वेसु न पाइऐ महा दुखिआरी । ५ । बोले नाही होइ बैठा मोनी । अंतर कलप भवाइए जोनी । अन्न ते रहिता दुःख देही सहिता । हुकम न बूझे विआपिआ ममता । ६ । विन सतगुरु किने न पाई परम गते । पूछहु सगल वेद सिम्रिते । मन मुखि करम करे अजाई । जिउ बाल घर ठउर न ठाई । ७ ।

— विभास प्रभाती महला ५ अष्टपदिआं अष्ट० २

(२४) मन रे गहियो न गुर उपदेस । कहा भइओ जे मूंड मुंडाइओ भगवौ कीनो भेस । —सोरठ महला ६ शब्द १०

(२५, गज साढै तै तै धोतीआं तिहरे पाइन तग । गली जिना जप मालिआं लोटे हथ निवग । ओइ हरि के संत न आखी-अहि वानारसि के ठग । १ । एसे संतन मो कउ भावहि । डाला सिउ पेडा गटका वहि । १ । रहाउ । वासन मांजि चरावहि ऊपरी काठी धोइ जलावहि । वसुधा खोदि करहि दुई चूल्हे सारे माणस खावहि । २ । ओइ पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि । सदा सदा फिरहि अभिमानी सकल कुटंब डुवावहि । —राग आसा कबीर जी शब्द २

(२६) अंतर मलि निरमल नहीं कीना वाहर भेष उदासी । हिरदे कमल घटि ब्रह्म न चीन्हा काहे भइआ संनिआसी । १ । भरमे भूली रे जैचंदा । नहीं नहीं चीनिआ परमानंदा । १ । रहाउ । घर घर खाइआ पिंड वधाइआ खिंथा मुंद्रा माइआ । भूमि मसाण की भसम लगाई गुरु विन तत न पाइआ । २ काई जपहु रे काइ तपहु रे काइ विलोवहु पानी । लख चुरासी जिनी उपाइ सो सिमरहु निरवाणी । ३ । काइ कमंडलु कापडीआरे अठ सठ काइ फिराही । वदति त्रिलोचन सुन रे प्राणी कण विनु गाहु कि पाही । ४ । —राग गुजरी त्रिलोचन शब्द १

(२७) फरीदा कंन मुसला सूफ गल दिल काती गुड वाति। वाहर दिसै चानणा दिल अंधिआरी राति।

—फरीद सलोक ५०

यह शब्द आदि गुरु ग्रंथ जी के हैं। आगे पाठ दसम ग्रन्थ जी का है:--

तव हरि वहुर दत्त उपजायो। तिन भी अपना पंथ चलायो। करमो नख सिख जटा सवारी। प्रभु की क्रिआ न कछु विचारि। २३

प्रन हरि गोरख को उपराजा सिख करहि तिन हूँ वड राजा। स्रवन फार मुद्रा द्वै डारी। हरि की प्रीति रीति न विचारी। २४

पुन हरि रामा नन्द कउ करा। भेस वैरागी को जिन धरा। कण्ठी कण्ठ काठ की डारी। प्रभु की क्रिआ न कछु विचारी। २५

जे प्रभु परम पुरुप उपजाए। तिन तिन अपुने राह चलाए। महादीन तब प्रभ उपराजा। अरव देस को कीनो राजा। २६

तिन भी एक पन्थ उपराजा। लिंग विना कीने सभ राजा। सभ ते अपुना नाम जपायो। सत नाम काहू न द्रड़ायो। २७

रसावल—न जटा मूंड धारों। न मुद्र का सवारों। न नैनं मिचाऊँ। न डिंभं दिखाऊँ। न कुकरमं कमाऊँ। न भेखी कहाऊँ।५२

चौपाई—जो जो भेख सु तन में धारे। ते प्रभु जन कुछ कै न विचारे। समझ लेहु सभ जन मन मांही। डिंभन में परमेसर नाहीं। ५३ जे जे करम कर डिंभ दिखाहीं। तिन परलोकन में गति नाहीं। जीवत चलत जगत के काजा। स्वांग देख कर पूजत राजा। ५४। स्वांगन में परमेसर नाहीं। खोज फिरे सभ ही के काही। अपुनो मन करमों जिह आना। पार ब्रह्म को तिनी पछाना। ५५

दोहा—भेख दिखाए जगत को लोगन को बस कीन। अन्त काल काति कटिओ वास नरक में लीन। ५६॥ जे जे जग को डिंभ दिखावै। लोगन मूंड अधिक सुख पावै। नासा मूंद करे प्रणामं। फोकट धरम न कौड़ी कामं। ५७॥ फोकट धरम जिते जग करही। नरक कुंड भीतर ते परही। हाथ हलाए सुरग न जाहू। जो मन जीत सका नहीं काहू। ५८॥ —विचित्र नाटक अध्याय ६

सवैया—

धिआन लगाइ ठगिओ सभ लोगन, सीस जटा नख हाथ बढ़ाए।
लाइ विभूति फिरिआ मुखि ऊपर, देव अदेव सभे डहकाए।
लोभ के लागे फिरियो घर ही घर, जोग के नियाल सभे विसराए।
लाज गई कुछ काज सरियो नहि, प्रेम बिना प्रभ पान न आए।

काहे कउ डिंभ करे मन मूरख, डिंभ करे अपनी पतरव्वे है।
काहे कउ लोग ठगे ठग लोगन, लोग गयो परलोक ग्वे है।
दीन दयाल की ठउर जहां तिह ठउर विषे तुहि ठउर नऐ है।
चेत रे चेत अचेत महाजड़, भेख के कीने अलेख न पै है। १६

आंखन भीतर तेल को डार, सुलोगन नीर बहाइ दिखावै।
जे धनवान लखे निज सेवक, ताही परोस प्रसादि जमावै।
जो धन हीन लखे तिन देत न, मांगन जात मुखे न दिखावै।
लूटत है पसू लोगन को, कबहूँ न परमेसर के गुन गावै। ३०

आंखन मीच रहे वक की जिम, लोगन एक प्रपंच दिखायो।
नियात फिरियो सिर वधक ज्यों असि धिआन विलोक-
-विलाव लजायो।

लाग फिरियो धन आस जिते, तित लोग गयो परलोक गवायो।
स्री भगवत भजियो न अजे जड़ धाम के काम कहां उरझायो। ३१

सवैये पातशाही १०

इक मड़ीअन कवरन वे जाहि। दूहुअन में परमेसर नाही। १८
इक तसवी इक माला धर ही। एक कुरान पुरान उचर ही। २०
जोगी संनिआसी है जेते। मुंडीआ मुसलमान गन केते।
भेख धरे लूटत संसारा। छपत साध जिह नाम अधारा। २३
पेट हेत नर डिंभ दिखांही। डिंभ करे विन पाईयत नांही।
जिन नर एक पुरुष कह धिआयो। तिन कर डिंभ न किसी
दिखायो। २४

चौवीस अउतार

इस प्रकार वेष आदि पाखण्ड का सबने खण्डन किया है। परन्तु उन वेषों का विवाद अद्यपर्यन्त समाप्त नहीं हुआ। साधारण प्रजा को छोड़ दो, धर्म धुरन्धर, नेता लोग भी वेष आदि पर बल देते हैं सत्य, क्षमा, संतोष, धर्म परायणता पर बल नहीं देते हैं। यह बात चिंतनीय है। भगवान् सबको सुबुद्धि दे।

सत्यार्थ-प्रकाश का पाठ

सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में ऋषि दयानन्द जी ने भारत के उन मतों पर विचार प्रगट किये हैं। जिन पंथों का सम्बन्ध वेद से है। वह वेद की संस्कृति मानते हैं। उन संप्रदायों में ऋषि ने सिख पंथ को भी लिया है। और उस प्रकरण में श्री गुरुग्रंथ साहिब जी का पाठ भी उद्धृत किया है। उसी पाठ पर इस शीर्षक में विचार करना है। इसीलिये इसका नाम यह लिखा है।

सत्यार्थप्रकाश में यह पाठ हैं—

१ 'ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भौ निर्वैर अकाल मूर्त अजोनि सहभं गुरुप्रसाद जप, आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच। —[जपुजी पौड़ी १]

२ वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि।
सन्त (साध) कि महिमा वेद न जाने।
—[सुखमनी पौड़ी ७।चो०८]

३ नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर।
—[सु० पौड़ी ८। चौ० ६]

यदि इस पाठ को उसी रूप में लिखना हो, मात्रादि का भेद न करना हो, तो यह पाठ इस प्रकार होगा-

(१) १ ओ सति नाम करता पुरुष निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनि सैभं गुर प्रसादी जपु। आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु। —जपुजी पौड़ी १

(२) वेद पड़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि (यह पाठ इस प्रकार नहीं है) साध की महिमा वेद न जानहि।

—सुखमनी अष्टपदी ७ पाद ८

(३) नानक ब्रह्म गिआनी आप परमेसुर।

—सुखमनी अष्टपदी ८ पाद ६

यदि इस पाठ में मात्राओं को देखा जाय तो महान् अन्तर है यथा--

१ ओ को ओं।
सति को सत्य। करता को कर्त्ता
अजूनी को अजोनी सैभं का सहभं।
निरभउ को निर्भौ निरवैर को निर्वैर।
मूरति को मूर्त प्रसादि को प्रसाद।
जपु को जप। सचु को सच
आदि अनेक भेद हैं। इसका कारण यह है

ऋषि स्वयं गुरुगुखी पढे हुए न थे। और उन्होंने गुरु ग्रन्थ जी का पाठ भी न किया था। किसी ने उनको बताया था। उसे सुन उन्होंने लिख लिया, वही सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया है। इसमें मुख्य भेद ओं और १ ओ का है। सिख पंथ में यह १ ओ ही लिखा जाता है, इसके अर्थ ओं के अर्थों के समान ही हैं। इस कारण अर्थ भेद नहीं। संस्कृत वाले ओं के पहले १ का अंक नहीं लिखते हैं। इस कारण ऋषि ने भी न लिखा।

अब रहा मात्राओं का भेद। श्री गुरु ग्रन्थ जी में अक्षरों पर जो मात्राएं हैं, उनका पूर्ण ध्यान पाठ में भी नहीं किया जाता। उन मात्राओं को नियम पूर्वक उच्चारण न करके उस शब्द का साधारण उच्चारण किया जाता है। गुरुमुखी में रेफ, संयुक्त अक्षर न होने से पाठ भेद हो जाता है।

इसी प्रकार लिखने में सिख भी इन मात्राओं को पूरा पूरा न लिखकर साधारण रूप से लिखते हैं। यथा—

सोरठ रवदास। जउ तुम चंद हम भए हैं चकोरा। गुरमत प्रभाकर भाई कान्ह सिंघ जी। श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब में 'रवदास' की जगह 'रविदास' पाठ है और 'हैं' के स्थान पर 'है' पाठ है। इसी प्रकार और लेखकों के पाठ भी हैं।

इन पाठों में विशेष चिंतनीय 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे, चारों वेद कहानि' का पाठ है। क्योंकि यह पाठ श्री गुरुग्रंथ साहिब जी में नहीं है।

इसका समाधान इस प्रकार है—

(१) जिस भांति 'करें करावे आपे आप। मानुष के कुछ नाहीं हाथ।' यह पाठ प्रायः पढ़ा जाता है। प्रचलित है किन्तु श्री गुरु ग्रंथ जी में यह पाठ भी नहीं है। इसी प्रकार 'वेद पढ़त ब्रह्मा मरे, चारों वेद कहानि' पाठ प्रचलित है श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में नहीं। प्रचलित होने से किसी ने कहा और ऋषि ने सुन कर लिख दिया।

(२) श्री गुरु ग्रंथ जी में यह पाठ आनुपूर्वी रूप में नहीं है। किन्तु इस भाव के शब्द मिलते हैं। इस पाठ के दो भाग बना लिये जायें। एक वेद पढत ब्रह्म मरे।' दूसरा 'चारों वेद कहानि'। इन भागों का भाव कहने वाले शब्द यह हैं यथा—

(क) नाभि कमलते ब्रह्मा उपजे वेद पड़हि मुखि कंठ सवार।
ताको अन्त न जाई लखणा आवत जात रहे गुबार।
—गुजरी महला १ एक शब्द २

(ख) चारे वेद ब्रह्मे कउ दीए पड़ि पड़ि करे वीचारि।
ताका हुकम न बूझै वपुड़ा नरक सुरग अवतारी।
—आसा महला ३ अष्टपदियां। अष्ट पदि २३

(ग) सनक सननन्द अंत नहीं पाइआ। वेद पड़े पड़ि ब्रह्मे जनम गवाइया। —राग आसा कवीर जी शब्द १०

वेद पढत ब्रह्मा मरे और 'वेद पडे पडि ब्रह्मे जनम गवाइआ तथा नरक सुरग अवतारी, और आवत जात रहे गुवार में शब्द भेद होते हुए भी भाव भेद नहीं है

दूसरा पाठ है 'चारों वेद कहानि।' इस भाव का शब्द यह है 'वेद कतेव इफतरा भाई दिल का फिकर न जाइ।' तिलंग कबीर जी श० १। इस पाठ में वेद को इफतरा कहा है। इफतरा का अर्थ बुहतान है। जैसा कि भाई कान्हासिंह जी ने लिखा है। वेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाइ।

इफतरा। कपोल कल्पना। गुरमत प्रभाकर पृष्ठ ६४८

पंडित तारासिंह जी ने लिखा है—

इफतरा। अ०। 'बहुतान' बहकाव, यथा 'वेद कतेव इफतरा भाई दिल का फिकर न जाइ। सामादि चारों वेद और अंजील आदिक किताबां परस्पर विरुद्ध वचनों से संदेह करने वाली हैं। जांते पूरे गुरों के उपदेस बिना इन से चित का संदेह जाना कठिन है गुरुगिरार्थ कोष पृष्ठ ११६

लुगात सईदी। इफतरा, बुहतान।

इस प्रकार वेद पढ़त ब्रह्मा मरे और चारों वेद कहानि का भाव इन शब्दों में है। और उस प्रकार का पाठ श्री गुरु ग्रंथ जी में नहीं है यह निश्चय है।

(३) कई सज्जन इस प्रश्न को इस रूप में कहते हैं। जब निश्चय है कि यह पाठ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में नहीं है। तब इस पाठ को सत्यार्थप्रकाश से निकाल ही देना चाहिये।

जो सज्जन पाठ निकालने की बात कहते हैं। आगे मैं इस पर विस्तार से विचार करना चाहता हूं, ताकि मेरी भावना को

पाठक ठीक-ठीक समझ लें। इस पर प्रथम उत्तर तो यह है—

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ऋषि दयानन्द जी हैं। उनका स्वर्गारोहण हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गए हैं। उनके जीवन-काल में यदि कोई उनको यह बात बतलाता, तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि वह इस पाठ को अवश्य ही निकाल देते। वह चाहते तो कोई और पाठ लिख देते, अथवा कुछ भी न लिखते. क्योंकि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है "इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय, उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा, वैसा ही कर दिया जायगा।"

इसलिये उस समय यह ठीक हो सकता था। अब किसी को भी इसमें परिवर्तन का अधिकार नहीं है। लेखक स्वयं बदलना चाहे तो बदल सकता है। दूसरे को बदलने का अधिकार न होने से अब इस पाठ का निकाल देना असम्भव है। अधिक से अधिक यही हो सकता है कि इस पाठ के नीचे टिप्पणी दी जाय। उसमें लिखा जाय कि यह पाठ इस रूप में ग्रंथ साहिब जी में नहीं है। और उस भाव के जो शब्द ऊपर लिखे हैं, वह भी लिख दिये जायें।

इसमें एक यह लाभ भी है। पाठक यह भी समझ सकेंगे, कि भूल सबसे होती है। ऋषि दयानन्द जी ने भी यह भूल से ही लिखा है।

यदि ऐसा होने पर भी वह सज्जन संतुष्ट न हों, और यही बल दें, कि जब यह पंक्ति श्री गुरुग्रंथ साहिब में नहीं है, यह निर्विवाद है और सत्यार्थ प्रकाश में यह पाठ गुरुग्रंथ जी के नाम से लिखा है, तो इसे निकाल देना ही चाहिये।

इसका उत्तर मैं यह दूंगा।

जो पाठ किसी ने लिखा है, और वह ठीक नहीं है। उस धर्म ग्रन्थ से वह पाठ निकाल दिया जाय। यह व्यवस्था सत्यार्थ

प्रकाश के लिये ही है, वा अन्य ग्रन्थों के लिये भी है। यदि प्रथम पक्ष माना जाय, कि सत्यार्थ प्रकाश के लिये ही है। तो यह कोई न्याय नहीं है। सत्यार्थप्रकाश से पाठ निकाला जाय, अन्य पुस्तकों से न निकाला जाय, इसमें कोई युक्ति नहीं, कि यह क्यों किया जाय।

यदि दूसरा पक्ष माना जाय, कि हां यदि कोई पाठ ठीक न हो तो सब ग्रन्थों से निकाल देना चाहिये, यह पक्ष न्याययुक्त तो है। किन्तु कठिनाई यह है कि उस धर्म ग्रन्थ के मानने वाले इसमें सहमत होंगे ? मेरी सम्मति में कोई भो सहमत न होगा। उदाहरण के लिये मैं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के पाठ ही लिखता हूँ—

गैंडा मारि होम जग कीए देवतिआं की बाणे

—राग मलार वार महला १ वार २५

देवतावों का स्वभाव है कि वह गैंडा मार कर हवन करते हैं। अजामेध, अश्वमेध, गोमेध, यज्ञ हैं। ऋषि दयानन्द जी ने इनके अर्थ ठीक-ठीक किये हैं। अश्व राष्ट्र को कहते हैं, उसका उत्तम प्रबन्ध ही अश्वमेध है। गो नाम अन्न का है, उत्तम और अधिक अन्न उत्पन्न करना ही गोमेध है। अजामेध पर उन्होंने नहीं लिखा, परन्तु लेख है अजा के अथ पुराना अन्न है। यह अर्थ छोड़कर भी, इन पशुओं अजा, अश्व, गौ, का मारना तो है गैंडे मारने वाला कोई यज्ञ नहीं है। यज्ञों का वर्णन करने वाले शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ और कात्यायनादि श्रौत सूत्र हैं। उनमें किसी ने भी गैंडे का यज्ञ नहीं लिखा है। यदि कोई दिखाने का कष्ट करे, तो मुझे अति प्रसन्नता होगी।

क्या इस पाठ को निकाला जाय ?

दूसरा पाठ हरणखसु वाला है वह इस प्रकार है—

(१) दुरमति हरणाखस दुराचारी । प्रभु नाराइण गरव प्रहारी ।
प्रहलाद उधारे कृपा धारी ।

—गौड़ी अष्टपदियां महला १ अष्टपदि ६

(२) निंदा दुसटी ते किन फल पाइआ हरणाखसु नखहि बिदारे ।
प्रहलाद जन सद हरि गुण गावै हरि जीउ लए उवारे ।

—सोरठ महला ३ शब्द ५

(३) भगतां दा सदा तूं रखदा हरि जीउ धुरि तू रखदा आइआ
प्रहलाद जनु तुधु राखि लए हरि जीउ हरणाखसु मारि पचाइया

—सोरठ महला ३ घर १ तितुकी शब्द १

(४) मेरी पाटीआ लिखहु हरि गोविन्द गोपाला ।
दूजे भाइ फाथे जमजाला । सति गुरकरे मेरी प्रतिपाला ।
हरि सुख दाता मेरे नाल । १ ।
गुर उपदेसिं प्रहलाद हरि उचरै ।
सासना ते बालक गमु न करे । १ । रहाउ ।

माता उपदेसै प्रहलाद पिआरे । पुत्र राम ना छोड़हु जीउ लेहु उवारे । प्रहलाद कहे सुनहु मेरी माइ । राम नाम न छोड़ा गुरि दिआ बुझाइ । २

संडा मरका सभि जाइ पुकारे । प्रहलाद आप विगडिआ सभ चाटड़े बिगाड़े । दुसट सभा महि मन्त्र पकाइआ । प्रहलाद का राखा होइ रघुराइआ ।।३।।

हाथ खडग करि धाइआ अति अहंकारि । हरि तेरा कहा तुध लए उवारि । खिन महि भैआन रूप निकसिआ थंम उपाड़ि । हरणाखसु नखी विदारिया प्रहलाद लीआ उवारि ।। ४

संत जना के हरि जीउ कारज सवारे । प्रहलाद जन के इकीह कुल उधारे । राग भैरउ महला ३ शब्द २०

(५) तिनि करते इक चलतु उपाइआ । अनहदवाणी शबद

सुणाइआ। मनुमुखि भुले गुरुमखि बुझाइआ। कारण करता करदा आइआ। १

गुर का शबद मेरे अन्तरधिआन। हउ कबहु न छोडउ हरि का नाम। १ रहाउ।

पिता प्रहलाद पड़ण पठाइआ। ले पाटी पाधे के आइआ।

नाम विना नहिं पड़हु अचार। मेरी पटीआ लिख देहु गोविंद मुरारि। २

पुत्र प्रहलाद सिउ कहिआ माइ। परविरति न पड़हु रही समझाइ। निरभउ दाता हरि जीउ मेरे नालि। जोहरि छोड़उ तउ कुल लागे गालि। ३

प्रहलाद सभ चाटड़े विगारे। हमारा कहिआ न सुणै आपणे कारज सवारे। सभ नगरि महि भगति दड़ाई। दुसट सभा का किछु न बसाई। ४

संडे मरके कीई पुकार। सभै दैत रहे झखमारि। भगत जना की पति राखे सोई। कीते कै कहिए क्या होई। ५

किरत संजोगी दैत राज चलाइआ। हरि न बुझै तिन आप भुलाइआ। पुत्र प्रहलाद सिउ वाद रचाइआ। अन्धा न बूझै काल नेड़े आइआ॥ ६

प्रहलाद कोठे विचि रखिआ वारि दिआ ताला। निरभउ बालक मूल न डरइ मेरे अन्तर गुर गोपाला। कीता होवे सरीकी करै अनहोदा नाउ धराइआ। जो धुरि लिखिआ सो आइ पहुता जन सिउ वाद रचाइआ। ७

पिता प्रहलाद सिउ गुरज उठाई। कहा तुमारा जगदीस गुसाई। जगजीवन दाता अन्ति सखाई। जहि देखा तहि रहिआ समाई। ८

थंमु उपाड़ि हरि आप दिखाइआ। अहंकारी दैत मार पचाइआ। भगता मनि आनन्द बजी वाधाई। अपने सेवक कउ देवडिआई। ९

जंमण मरणा मोह उपाइआ। आवण जाणा करते लिखि पाइआ। प्रहलाद के कारज हरि आप दिखाइआ। भगता का बोल आगै आइआ।१०। देव कुली लखमी कउ करहि जैकार। माता नरसिंघ का रूप निवार। लखमी भउ करै न साकै जाइ। प्रहलाद जनु चरणी लागा आइ।११। भगता का अंगीकार करदा आइआ। करतै आपणा रूप दिखाइआ। १३। —भैरउ महला ३ शब्द १

(६) पाधरी छन्द-इह भांत जग द्रोही फिराइ। जलं वा थलीयं हिरनाछराइ।२। प्रहलाद भगत लीनोवतार। सुभ करन काज संतन उधार। चटसार पढ़न सौंपिओ नृपाल। पटयहि कहिओ लिखदे गुपाल।४।

तोटक-इक दिवस गयो चटसार नृपं। चित चौप रहियो सभ देख सुतं। जु पढ़ियो दिजते सुन ताहि रड़ियो। निरभै सिस नाम गुपाल पढ़ियो।५ सुन नाम गुपाल रिसियो असुरं। बिन मोहि सो कौन भजो दुसरं। दिज याहि धरो सिस आन हनो। जड़ क्यों भगवान को नाम भनो ।६ जलं और थलं इक वीर मनं। इह कयहि गुपाल को न म भनं। तब ही इह बांधत थंम भए। सुन स्रवनन दानव वैन धए।७। गहि मूड़ चले सिस मारन को। निकसि ओ जगुपाल उबारन को। चक चौप रहे जन देख सबै। निकसियो हरि फारी कवार जवै।८। लख देव दिवार सबै थहरे। अविलोक चराचर हू हरि रे। गरजे नर सिंघन रात करं। द्रग रत कीयो मुख सोण भरं। ६। लख दानव भाज चले सब ही गरजियो नर सिंघ रणं जब ही। इक भूपति ठाढ रहियो रण में। गहि हाथ गदा निरभै मन में। १०। लरजे सब सूनृपं गरजे। समुहाथ भए भट केहर के।..............११............

चौपाई-त्याग चले रण को सब बीरा। लाज विसरगी भए अधीरा। हिरनाछस तब आप रिसाना। बांध चलियो रण को करगाना।२८ भरियो रोस नरसिंघ सरुपं। आवत देखि सुमुहिरण भूपं।

निज धावन को रोस न माना । देख सेवकहि दुःखी रिसाना ।२६।
भुजंग प्रयात मचियो दुंद जुधं मचे दुऐ जुआणं ।
तडंकार तेगं कडक्के कमाणं ।
फिरियो कम्प कै दानवं सुलताणं ।
हडं स्रोणा चले मधि मुल्लताणं ।३१।
फिरियो सिंघ सूरं करुरं करालं ।
कंपाइ सटा पूछ फेरी विसालं ।३३।
दोहरा—गरजत रण नरसिंघ क भज्जे सूर अनेक ।
एक टिकियो हिरनाछ तह अवरन योद्धा एक ।३४
चौपाई—मुसट युद्ध जुटे भट दोऊ · तीसर ताहि न पिखियत कोऊ ।
भए दुहन के राते नैणा । देखत देव तमासे गैणा ।३५
असट दिवस असट निस जुद्धा । कीनो दुहन भरन मिल क्रुद्धा ।
वहुरो असुर कछुक मुरझाना । गिरियो भूमि जन वृछ पुराना ।३६
सींच वार पुन ताहि जगायो । छुटे मूरछा पुनि जी जीया आयो ।
वहुरो भए सूर दोऊ क्रुद्धा । मांडयो वहुर आप महि जुद्धा ।३७
भुजंगप्रयात-हलाचाल कै कै पुनर वीर ढूके । मचियो जुद्ध जिउ करण संगं घड़के । नखं पात दोऊ करे दंत घाते । मनो गज्ज जुट्टे वनं मसत माते ।३८। पुनर नारसिंघे धरा ताहि मारियो । पुरानो पलासी मनो वाइ डारयो । हनयो देख दुसटं भई पुहप वरषं । कीयो देवतियों आन के जीत करषं ।३६
पांधरीछन्द-कीनो नरसिंघ दुसटं संघार । धरयो विसनू सपतमवतार ।
लिंनो सु भगत अपनो छिनाइ सब सृष्टि धरम करम न चलाइ ।४०
प्रहलाद करयो नृप छत्र फेर । कीनो संघार सब इम अंधेर ।
सब दुष्टारिष्ट दिने खपाइ । पुन लई जोति जोतहि मिलाई ।४१
—दसम ग्रंथ अवतार वर्णन, नरसिंघावतार

इस पाठ का संक्षेप से भाव यह है—हिरण्याक्ष नाम का एक राक्षस था जो ईश्वर को नहीं मानता था । उसके गृह में पुत्र रत्न

हुआ, उनका नाम प्रह्लाद रखा गया। यह ईश्वर भक्त था। इसे चटशालामें पढ़ने भेजा · भी ईश्वर का नाम ही [illegible]ता, पढ़ता था, पिता को पता लगा, वह रुष्ट हुआ, प्रह्लाद को थंभ से बांधा गया। प्रह्लाद की रक्षा के लिए भगवान् नरसिंह रूप में प्रगट हुए। उसका हिरण्याक्ष से युद्ध हुआ। नरसिंव ने हिरण्याक्ष को मार दिया और उसके स्थान पर प्रह्लाद को राज्य तिलक करके राजा बनाया गया। प्रहला के २१ कुलों का उद्धार हुआ।

सार यह, कि प्रह्लाद की रक्षा के लिए नरसिंह अवतार हुए। उन्होंने हिरण्याक्ष को मारा।

यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। पुराणों में नरसिंह अवतार का भी उल्लेख है। हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु दो भ्राता थे। दोनों ने देवों को दुःख दिया था, दोनों के मारने के लिए भगवान् के दो अवतार हुए थे। एक वाराह, दूसरा नरसिंह। दोनों अवतारों ने दोनों राक्षसों को मारा थां। यह निर्विवाद है। पंडित तारासिंह जी ने गुरु गिरार्थ कोष में लिखा है—

हिरणाखस। दे प्रहलाद के पिता का भाई राखस, प्रहलाद के पिता का नाम हिरणकशिपु था। हिरण सुवरण जैसी बसंती रंग की विलीआं अखां वाला मंनके नाम हिरणाख्य रखा, हिरण सुवरण की सेहजा वाला जाणके नाम हिरण्यकशिपु है। कशिपु सेहजा का नाम है।

सत्यर्थप्रकाश के २१३ पृष्ठ पर लिखा है—

"पुनः वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु, उत्पन्न हुए। उनमें से हिरण्याक्ष को वराह ने मारा।..........

अब रहा हिरण्यकश्यप उसका लड़का जो प्रह्लाद था, वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ाने को पाठशाला में भेजता था। तब वह अध्यापकों से कहता था, कि मेरी पट्टी में राम राम लिख

देखो। जब उसके बाप ने सुना, उससे कहा तू हमारे शत्रु का भजन क.. करता ... छोकरे ने ... ना। तब उसके बाप ने उसको बांधके पहाड़ से गिराया, कूप में डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खम्भा आगी में तपाके, उससे बोला, जो तेरा इष्ट देव राम सच्चा हो, तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शंका हुई, जलने से बचूंगा वा नहीं ? नारायण ने उस खम्भे पर छोटी छोटी चींटियों की पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ, झट खम्भे को जा पकड़ा वह फट गया, उसमें से नृसिंह निकला, और उसके बाप को पकड़ पेट को फाड़ डाला। पश्चात् प्रह्लाद को लाड से चाटने लगा। प्रह्लाद से कहा वर मांग। उसने अपने पिता की सद्गति होनी माँगी। नृसिंह ने वर दिया कि तेरे इक्कीस पुरुषे सद् गति को गये।"

यह भागवत पुराण की कथा है। यह लिखकर ऋषि ने आगे इसकी समालोचना की है। वह समालोचना वहां की पढ़ें।

पंडित तारासिंह जी और ऋषि दयानन्दजी का मत है, कि प्रह्लाद के पिता का नाम हिरण्याक्ष नहीं था। उसका नाम हिरण्यकश्यपु था। और ऐसा ही पुराण में है। नृसिंहावतार ने प्रह्लाद के पिता को मारा था इसलिये नृसिंह ने हिरण्यकश्यपु को मारा था, हिरण्याक्ष को नहीं।

आदि श्री गुरु ग्रन्थ जी तथा दसम गुरु ग्रन्थ जी में नृसिंह द्वारा हिरण्याक्ष का मारना जो लिखा है। वह किसी पुराण में नहीं है और ठीक भी नहीं है।

अब यदि कोई कहे कि यह दोनों, "गैंडे मार होम जगकीए, हरणाखस नखहि विदारे" पाठ श्री गुरु ग्रंथ ही से निकाल दिये जायें, अथवा इन पाठों को बदल दिया जाय। तो इस बात को कोई भी न मानेगा क्योंकि रामराय जी ने "मिटी मुसलमान

की" के स्थान पर दिल्ली में 'मिटी बेइमान की' पाठ बदला था, गुरु हरराय जी ने उनको गद्दी से पृथक् कर दिया। और गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिख दीक्षा आरम्भ की उस दीक्षा में अब तक कहा जाता है—राम राइयों के साथ सिख व्यवहार न करें अर्थात् उनसे रोटी बेटी का सम्बन्ध न करें। और भाई मनिसिंह जीने पाठ नहीं कुछ क्रम बदला था। उसे शाप दिया गया कि तूने गुरु देह का अंग-भंग किया है। अतः आपके भी अंग-अंग काटे जायेंगे। उसके अंग अंग काटे गए।

इन ऐतिहासिक घटनाओं के होते हुए न तो कोई व्यक्ति कह सकता है कि इस प्रकार के पाठों में सुधार किया जाय। और न ही यह बात हो सकती है। अर्थात् यह असम्भव है।

जैसे श्री गुरु ग्रंथ जी के पाठ बदलने का किसी को अधिकार नहीं है। इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश का पाठ 'वेद पढत ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि' के बदलने वा निकालने का भी किसी को अधिकार नहीं है। और यह भी निर्णीत है, कि यह पाठ क्रमशः इसी भांति श्री गुरु ग्रंथ जी में नहीं है। और इस भाव का दूसरा पाठ है, जैसा कि मैंने पहले लिखा है।

सत्यार्थप्रकाश के पाठ विषय में जो मैं ठीक समझता हूं और आर्यसमाज का सिद्धान्त है, वह मैंने लिख दिया है, पाठक इस पर विचार करके निश्चय करलें।

अन्य सिद्धान्तों पर भी मैंने सत्यार्थप्रकाश और श्री गुरु ग्रंथ जी के पाठ लिख दिये हैं, ताकि पाठकों को समझने में सुविधा हो। इतना लिखकर पुस्तक समाप्त करता हूं और आशा करता हूं कि इस से सिद्धान्त ज्ञान में पाठकों को सहायता मिलेगी।

—:*:—

सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली।